DHRAM DOOT 1965 G.K.V.

धर्म-दूत

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्स

विषय-सूची

जो नर क्रोधी, मन में वैर रखनेवाला, पाप से लिप्त,
नास्तिक और छल-कपट करनेवाला हो,
उसे वृषल (नीच) जानना !

—भगवान् बुद्ध

वर्ष ४
अंक २

ज्येष्ठ पूर्णिमा बु० सं० २४८२ / वि० सं० १९९५

वार्षिक मूल्य ॥)

देशभक्त पं० जवाहरलाल जी का शुभ सन्देश

"वैशाख-पूर्णिमा"

वैशाख-पूर्णिमा के शुभ अवसर पर, जब कि बौद्ध-संसार भगवान् बुद्ध की जयन्ती को मानता है, मैं लंका के भाइयों को विशेष रूप से नौजवानों को अपनी शुभ कामना भेजता हूँ।

दो हजार पाँच सौ वर्ष से विश्व भर के अधिकांश मनुष्य बुद्ध की शिक्षाओं तथा उनकी पुण्य-स्मृति में शान्ति और सान्त्वना पाते आ रहे हैं।

इस समय, जब कि सारा संसार युद्ध-भय और अनेक अन्यायों से उत्पीड़ित है, और जब कि सब लोग किंकर्तव्य-विमूढ़ हो चारों ओर देख रहे हैं, हमें चाहिए कि भगवान् के अमर सन्देश से प्रकाश प्राप्त करें और मनुष्य के जीवन को उसके नवीन परिस्थितियों के अनुसार सुसंघटित रक्खें।

आजकल की दुनिया विज्ञान पर स्थित है। इसलिये उसे समझने के लिये हमें चाहिए कि वैज्ञानिक ढंग और जोश से काम लें।

लेकिन हाँ, जो भौतिकवाद मनुष्य की बाह्य उन्नति के लिये काम कर रहा है उसकी आध्यात्मिक बातों की अवहेलना नहीं कर सकता।

यदि हमें संसार में कुछ उचित कार्य करना हो, तो इन दोनों सिद्धान्तों को एक बैलेन्स Balance पर लाना चाहिए।

मुझे विश्वास है कि लंका के भाई इन दोनों बातों को सामने रखते हुए अपनी और सारे संसार की समुन्नति के लिये काम करेंगे।

---

c/o Postmaster
Gyentse (Tibet)

राहुलजी का पत्र

22–5–38

प्रिय जगदीश,

पत्र मिला। फरी (१४३०० फीट) में मुझे सख्त बुखार ३ दिन तक रहा। वहाँ से डाँडी पर सात दिन में कल यहाँ पहुँचा। अब तबियत अच्छी है। कमजोरी है। कल परसों तक यहाँ से पहिले विहार में जाना है। शायद अबकी बार लंबी यात्रा नहीं होगी। प्रथमग्रासे मक्षिकापात: ही नहीं। साथी भी कुछ कृश हो रहे हैं। नागार्जुन एक और तरुण चित्रकार के साथ दो-तीन दिन में कीलम्पाद से यहाँ के लिये प्रस्थान करनेवाले हैं, उनके यहाँ पाँच वर्ष रहने का इन्तज़ाम देना है, और सब अच्छा।

तुम्हारा—

राहुल सांकृत्यायन

श्रीमती भगवती देवी का स्वर्गवास

"अनिचावत् संखारा उप्पादवय धम्मिनो"।

श्रीयुक्त शिवप्रसादजी गुप्त की धर्मपत्नी श्रीमती भगवती देवी की मृत्यु से "धर्मदूत-परिवार" को बहुत चोट पहुँची है। हम आशा करते हैं कि श्रीमतीजी की स्वर्गीय आत्मा शान्ति लाभ करेगी और श्री गुप्तजी इस कठिन समय को धैर्यपूर्वक काट लेंगे। हम धर्मदूत-परिवार हृदय से दुःख प्रकट करते हैं।

धर्म-दूत

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवलपरिपुन्नं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग (विनय पिटक)

"भिक्षुओ! सर्व साधारण के हित के लिये, लोगों को सुख पहुँचाने के लिये, उन पर दया करने के लिये तथा देवताओं और मनुष्यों का उपकार करने के लिये घूमो। भिक्षुओ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्थाओं में कल्याणकारक धर्म का उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करो, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य्य का प्रकाश करो।"

सम्पादक—धम्मानन्द

वर्ष ४ } सारनाथ, जून बु० सं० २४८२ / ई० सं० १९३८ { अंक २

ग्रन्थ-प्रमाण

(लेखक—त्रिपिटकाचार्य्य, 'महापण्डित' श्री राहुल सांकृत्यायन)

स्वतः प्रमाण होने का दावा करनेवाला सिर्फ एक ग्रन्थ नहीं है। सभी धर्मवाले अपने अपने ग्रन्थ को स्वतः प्रमाण मानते और मनवाने की कोशिश करते हैं। ब्राह्मण वेद को स्वतः प्रमाण मानते हैं, जिसकी बहुत सी बातें अन्य धर्म वालों की पुस्तकों एवं विज्ञान की कितनी ही प्रयोग द्वारा सिद्ध बातों के विरुद्ध पड़ती हैं। फिर ऐसा ग्रन्थ स्वतः प्रमाण कैसे माना जा सकता है? यदि कहो कि वेद विज्ञान के प्रयोग-सिद्ध सिद्धान्तों के विरुद्ध नहीं, तो सवाल होगा—यह कैसे मालूम? इसकी सिद्धि के लिए अन्त में बुद्धि का ही आश्रय लेना पड़ेगा। फिर क्या इससे सिद्ध नहीं होता कि वेद की प्रामाणिकता भी बुद्धि पर ही निर्भर है? फिर तो वेद की अपेक्षा बुद्धि ही स्वतः प्रमाण हुई। जो बात यहाँ वेद के बारे में कही गई, वही बाइबिल, अंजील, कुरान आदि स्वतः प्रमाण मानी जानेवाली पुस्तकों के बारे में भी समझना चाहिए। वस्तुतः जब ईश्वर ही नहीं, तो ईश्वर की पुस्तक कहाँ से होगी?

पुस्तकों के स्वतः प्रमाण मानने से दुनिया में कितने भयङ्कर अत्याचार हुए हैं। गेलेलियो की वह दुर्गति न होती यदि बाइबिल को स्वतः प्रमाण नहीं माना जाता। और भी कितने ही वैज्ञानिकों को जान से हाथ न धोना पड़ता, यदि बाइबिल को स्वतः प्रमाण न माना जाता। यवन तत्त्ववेत्ताओं के सहस्राब्दियों के परिश्रम ग्रन्थरूप में जिस सिकन्द-

रिया के पुस्तकालय में सुरक्षित थे, उनको जलाकर ख़ाक न किया गया होता, यदि मुसलमान विजेता कुरान को स्वतः प्रमाण न मानते। किसी ग्रन्थ का स्वतः प्रमाण मानना असहिष्णुता का कारण होता है; इसने दुनिया में हजारों वर्षों से मनुष्य-जाति को धर्मान्धता, मिथ्याविश्वास और मानसिक दासता के गड्ढे में ही नहीं गिरा रक्खा है, बल्कि इसने ज्ञान के प्रसार में रुकावट पैदा करने के साथ खून से भी धरती को रँगने में मदद दी है। ईसाई धर्मयुद्ध क्या थे, बाइबिल और कुरान के स्वतः प्रमाण होने के झगड़े के प्रमाण।

किसी ग्रन्थ का स्वतः प्रमाण मानना, उसमें वर्णित विषयों पर संदेह न कर आगे की जिज्ञासा को रोक देना है। जिज्ञासा ही दुनिया के बड़े-बड़े वैज्ञानिक आविष्कारों के करने में कारण हुई है। यदि गलेलियो बाइबिल के कहे अनुसार पृथ्वी को चिपटी मान लेता तो उसे पृथ्वी के गोल होने के प्रमाणों का मान न होता। यदि केटलर बाइबिल के सूर्य्य-भ्रमण को निर्भ्रान्त मान लेता, तो पृथिवी के घूमने के अपने तीन नियमों का कहाँ से आविष्कार करता? वस्तुत: ग्रन्थ के स्वतः प्रमाण मानने पर न्यूटन गुरुत्वाकर्षण का पता न लगा सकता और न आइन्स्टाइन उसके संशोधक सापेक्षता के महान् सिद्धान्त का आविष्कार कर सकता। वस्तुत: संसार की विद्या, सभ्यता सम्बन्धी जितनी भी प्रगति हुई है, वह ग्रन्थों के स्वतः प्रमाण के इन्कार से हुई है। व्यवहार में कौन मनुष्य अपने धर्म-ग्रन्थ की स्वतः प्रामाणिकता मानता है? ग्रन्थ अपने अपने समय की रूढ़ियों, अन्ध विश्वासों और अज्ञताओं से जकड़े होते हैं। वह अपने समय के धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक व्यवहारों के पारितोषिक होते हैं। सहस्राब्दियों बाद वह बातें मरी हुई रहती हैं, तो भी वह मरे मुर्दे के गले मढ़ना चाहते हैं। सेन्ट पाल के समय स्त्रियों का सिर ढकना उस समय के फैशन के अनुसार अच्छा समझा जाता हो, किन्तु उस लिखावट के कारण आज युरोप की स्त्रियों को गिरजे में और न्यायालय में कसम खाते वक्त टोपी लगाने पर मजबूर क्यों किया जाय, जब कि दूसरी जगह समाज उसकी आवश्यकता नहीं समझता है?

ग्रन्थ के स्वतः प्रमाण होने के लिये उसके कर्त्ता को सर्वज्ञ मानना पड़ेगा—सर्वज्ञ भी सभी देश, सभी काल, सभी वस्तु के सम्बन्ध में। फिर यदि कोई सर्वज्ञ हमारे पैदा होने से हजार वर्ष पूर्व हमारे द्वारा किये जानेवाले अच्छे-बुरे सभी कर्मों को जानता था, तब तो हम आज वैसा करने पर मजबूर हैं, अन्यथा उसकी सर्वज्ञता झूठ हो जायगी। फिर मनुष्य ऐसे सर्वज्ञ के हाथ में क्या कठपुतली मात्र नहीं है? फिर कठपुतली को अपने लिये अच्छा-बुरा काम चुनने और करने का क्या अधिकार? और तब ऐसे धर्म, उसके धर्म, उसके ग्रन्थ और उसमें कही गई शिक्षाओं का प्रयोजन क्या?

परिशुद्ध और मुक्त बनने के लिये कर्म करने में मनुष्य का स्वतन्त्र होना जरूरी है। कर्म करने की स्वतन्त्रता के लिए बुद्धि का स्वतन्त्र होना जरूरी है। बुद्धि-स्वातन्त्र्य के लिये किसी ग्रन्थ की परतन्त्रता का न होना आवश्यक है। वस्तुत: किसी ग्रन्थ की प्रामाणिकता उसके बुद्धिपूर्वक होने पर निर्भर है, न कि बुद्धि-प्रामाणिकता ग्रन्थ पर।

बौद्ध-धर्म

(लेखक—भदन्त बोधानन्द महास्थविर, लखनऊ)

['धर्मदूत' वर्ष दूसरा अंक दूसरे के बाद]

बौद्ध-धर्म के दार्शनिक सिद्धान्त जानने के लिये प्रतीत्य-समुत्पाद (कार्य कारण शृंखला = दुःखोत्पत्ति-क्रम) का जानना अत्यन्त आवश्यक है। बिना इसे समझे बौद्ध-दर्शन का समझना असम्भव है। मनुष्य प्रतिक्षण मरकर नवजीवन धारण करता है। कार्य कारण के सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य उत्पन्न होता है। मनुष्य और कुछ भी नहीं है केवल पंच स्कन्धों का समुच्चय मात्र है। यह पंच स्कंध-समन्वित मनुष्य कार्य-कारण नियम से जिस प्रकार उत्पन्न होते हैं उसी को प्रतीत्य समुत्पाद नीति कहते हैं। यथा :—

अविद्या के होने से संस्कार, संस्कार के होने से विज्ञान, विज्ञान के होने से नाम-रूप, नामरूप के होने से षडायतन, षडायतन होने से स्पर्श, स्पर्श होने से वेदना, वेदना होने से तृष्णा, तृष्णा होने से उपादान, उपादान होने से भव, भव होने से जन्म, जन्म होने से जरा, मृत्यु, शोक, विलाप, दुःख, दुश्चिन्ता और परेशानी इत्यादि विविध दुःखों की उत्पत्ति होती है।

(१) अविद्या क्या है ? चार आर्य सत्य और प्रतीत्य समुत्पाद (कार्य-कारण-शृंखला) का अज्ञान।

(२) संस्कार क्या है ? कर्म चेतना (Thought activities)। ये तीन प्रकार के हैं; यथा :—पुण्यमय संस्कार, अपुण्यमय संस्कार, आनेञ्जाभि संस्कार अर्थात् पाप-पुण्य से रहित संस्कार।

(३) विज्ञान क्या है ? प्रतिसन्धि या पुनर्जन्म ग्रहणकारी चित्त।

(४) नाम रूप क्या है ? चित्त और रूप के भेद। नाम से यहाँ चित्त समझना चाहिए और रूप से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदि भूतों, एवं शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इन पाँचों विषयों को ग्रहण करना चाहिए।

(५) षडायतन क्या है ? चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वक् और मन यह छः इन्द्रियाँ।

(६) स्पर्श क्या है ? छः इन्द्रियों से शब्दादि पंच विषयों और बाहरी जगत् का सम्बन्ध।

(७) वेदना क्या है ? छः इन्द्रियों के शब्दादि विषयें और बाहरी जगत् के स्पर्श से जो अनुभूति होता है उसे वेदना (Sensation) कहते हैं। वेदना तीन प्रकार की होती हैं—सुख-वेदना, दुःख-वेदना और सुख-दुःख से रहित वेदना।

(८) तृष्णा क्या है ? वेदना से उत्पन्न विषय-सुखों के भोगने में राग या प्रबल इच्छा। वे तीन प्रकार की हैं। यथा :—काम-तृष्णा, भव-तृष्णा, विभव-तृष्णा। काम-तृष्णा (इन्द्रियों के सुख भोगने की तृष्णा), भव-तृष्णा (अपने व्यक्तिगत जीवन को स्थायी रूप होने की तृष्णा)। विभव-तृष्णा (अपने इस व्यक्तिगत जीवन के बाद

कोई परलोक है न पुनर्जन्म और न कोई कर्मों का फल। इसलिये जहाँ तक आनन्द लूटते बने लूटने की तृष्णा)।

(६) उपादान क्या है ? विषय-भोगों की प्राप्ति के लिये यत्न और आकुलता।

(१०) भव क्या है ? (Becoming) विषय-भोगों में राग-द्वेषात्मक अहंकार, ममङ्कार होने का भाव।

(११) जन्म क्या है ? नवीन पंच स्कन्धों का सम्मिलित होकर जीव-रूप से फिर उत्पन्न होना।

(१२) दुःख क्या है ? जन्म से दुःख उत्पन्न होता है। यथा :—जरा (बुढ़ापा), मरण, शोक, परिदेव (विलाप), दुःख (शारीरिक रोग), दौर्मनस्य (दुश्चिन्ता = मानसिक दुःख), उपायास (परेशानी), प्रिय-वियोग, अप्रिय संयोग, इच्छित वस्तु का अलाभ, अनिच्छित वस्तु का लाभ इत्यादि वे अन्त दुःखों की शृंखला हैं।

कौन से स्मरणातीत काल में पहले पहल अविद्या-वश इस व्यक्ति जीव की उत्पत्ति हुई थी। यह कोई नहीं कह सकता क्योंकि अविद्या की पूर्व कोटि अज्ञात है।

जीवों ने इस जन्म के पूर्ववर्त्ती जन्मों में अविद्यावश नाना प्रकार के शुभाशुभ कर्मों को किया था। इस शुभाशुभ कर्मों के कारण चित्त में कुशलाकुशल या शुभाशुभ संस्कार की उत्पत्ति के कारण पुनर्जन्म ग्रहणकारी चित्त या विज्ञान उत्पन्न होता है। विज्ञान की उत्पत्ति से नामरूप एवं छः इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। इन नामरूप और छः इन्द्रियों के द्वारा बाहरी जगत् के सम्पर्क में आकर वेदना या अनुभूति एवं काम-तृष्णा, भव-तृष्णा और विभव-तृष्णा की उत्पत्ति होती है। तब शाश्वत आत्मा के अस्तित्व का तथा उच्छेदवाद आदि मिथ्या दृष्टियों का विश्वास करके पुनर्जन्म उत्पादनकारी साधन समूह अर्थात् उपादान उत्पन्न करता है। यही पुनर्जन्म उत्पादनकारी उपादान सब मनुष्यों को सुगति भूमि, दुर्गति भूमियों में जन्म ग्रहण कराता है। जन्म होने के कारण ही सब दुःखों की उत्पत्ति होती है। और जो लोग अनासक्त भाव से कर्म करते हैं (acting non-action उन लोगों के किसी प्रकार के संस्कार नहीं उत्पन्न होते हैं; वे ही महापुरुष निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं। जो अनागामी महापुरुष लोग हैं उन लोगों के शरीर में उत्ताप के सिवाय जीवन का और कोई लक्षण नहीं रहता। उन लोगों का चित्त ग्राह्य-ग्राहक-भाव-रहित होकर शून्यता को प्राप्त हो जाता है। उन लोगों को फिर किसी प्रकार के संस्कार की उत्पत्ति नहीं होती। इसलिये तृष्णा का अत्यन्त क्षय होकर निर्वाण लाभ करते हैं। इस प्रकार संक्षेप में बौद्ध-तत्त्वज्ञान के विषय में कहकर हम दृढ़ आशा के साथ अपने भारतीय विद्वान् बौद्ध-भ्राताओं से अनुरोध करते हैं कि वे लोग इस प्रतीत्य समुत्पाद नीति के ऊपर प्रकाश डालकर बौद्ध-तत्त्व-ज्ञान को समझने के लिये हिन्दी-भाषा-भाषियों के सहायक बनेंगे।

———

सात अपरिहाणीय-धर्म

(लेखक—सुमन वात्स्यायन)

भगवान् बुद्ध के समय वर्त्तमान बिहार प्रान्त में दो शक्तिशाली राष्ट्र थे। एक था वज्जियों का गण (प्रजातन्त्र) राज्य और दूसरा था मगध राज्य जो आगे चलकर भारत के सबसे बड़े साम्राज्य के रूप में परिणत हो गया। वज्जी या लिच्छवियों के गण राज्य में वर्त्तमान मुजफ्फरपुर, चम्पारन और दरभङ्गा के जिले शामिल थे। लिच्छवियों के आपस का सङ्गठन बहुत मज़बूत था। वे अपने सभी कामों में एकमत रहते थे।

लिच्छवियों और मगधमें राजा अजातशत्रु में सदा संघर्ष रहता था। लड़ाई का मुख्य कारण था गङ्गा नदी होकर बाहर से आनेवाले माल के आयकर को लेकर। गङ्गा का किनारा दोनों के राज्य में पड़ता था। किन्तु मगध का राज्य सामन्तशाही था; इसलिये वह अपना टैक्स ठीक से वसूल नहीं कर पाता था। लिच्छवी लोगों के साथ ऐसी बात नहीं थी। वहाँ राज का अधिकारी प्रत्येक आदमी होता था। इसी लिये वे उसे अपना समझ मुस्तैदी से काम करते थे। अजातशत्रु के सिपाहियों के आने के पूर्व ही वे व्यापारियों से टैक्स वसूल कर लेते थे।

इस प्रकार पड़ोसी राज की समृद्धि अजातशत्रु के लिये असह्य हो गई। किन्तु प्रजातन्त्र-राज्य से लड़ाई छेड़ना कोई आसान काम नहीं था। इसलिये उसने इस विषय पर किसी योग्य पुरुष से विचार-विनिमय करने का निश्चय किया*।

उन दिनों भगवान् बुद्ध राजगृह में गृध्रकूट पहाड़ पर रहते थे। राजा अजातशत्रु को जब पता लगा कि भगवान् राजगृह में ही हैं; तब उसने अपने महामन्त्री को बुलाकर कहा—"मन्त्री! जहाँ भगवान् हैं वहाँ तुम जाओ और उन्हें मेरी ओर से नमस्कार कहना। कुशल-मंगल सब पूछकर उनसे कहना कि महाराज अजातशत्रु लिच्छवियों पर चढ़ाई करना चाहते हैं। राजा का मतलब है वज्जियों को नष्ट कर देने का। और मन्त्री! भगवान् जो कुछ इस पर कहें उसे तुम ध्यान से सुनना। क्योंकि उनकी कही बात गलत नहीं होती है"।

महामन्त्री राजा का संवाद लेकर भगवान् के पास गया और नमस्कार करके सब बातें कह सुनाईं।

भगवान् ने आयुष्मान आनन्द को सम्बोधन करके कहा—१—"आनन्द! क्या वज्जी लोग नियमित रूप से राय-बात करने के लिये सभा करते हैं?"

"हाँ भन्ते! करते हैं", ऐसा सुना है।

२—"आनन्द! क्या वज्जी लोग एक हो उठते बैठते हैं; एक हो अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं?"

"हाँ, भन्ते!"

---

* अट्ठकथा के आधार पर

३—"आनन्द ! क्या वज्जी लोग गैरकानूनी बात को कानूनी तो करार नहीं देते ? वे कानून की अवहेलना तो नहीं करते ?"

"नहीं भन्ते ।"

४—"आनन्द ! क्या वज्जी लोग अपने कुल-वृद्ध का सत्कार करते हैं; वे उनकी सुनने योग्य बातें ध्यान से सुनते हैं ?"

"हाँ भन्ते !"

५—"आनन्द ! क्या वज्जी अपनी कुल-स्त्रियों, कुल-कुमारियों के साथ किसी प्रकार का अनाचार तो नहीं करते ?"

"नहीं भन्ते !"

६—"आनन्द ! वज्जियों के नगर के बाहर या भीतर जो देवस्थान (चैत्य) हैं उनका वे सम्मान तो करते हैं न; उनके साथ कुव्यवहार तो नहीं करते ?"

"नहीं भन्ते !"

७—"आनन्द ! क्या वज्जी अपने गण राज्य में अर्हतों की सेवा-शुश्रूषा करते हैं ?"

"हाँ भन्ते ! करते हैं ।"

इस प्रकार सातों अपरिहाणीय धर्म (अ-पतन के नियम) को कहकर भगवान् ने राजा अजातशत्रु के महामन्त्री को बुलाकर कहा—"मन्त्री ! जब तक यह सात अपरिहाणीय धर्म वज्जियों में रहेंगे, तब तक मन्त्री ! वज्जियों की उन्नति ही समझना" ।

महाबोधि विद्यालय सारनाथ

सेठ युगलकिशोर बिड़ला का दान

विद्यालय के शुभचिन्तकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि श्री सेठ युगलकिशोर जी बिड़ला ने सारनाथ में जो तीन बीघे ज़मीन विद्यालय के लिये ले रक्खी थी उसका दान-पत्र रजिस्ट्री कराकर महाबोधि सभा को दे दिया, जिसके लिये हम सारनाथवासी उनके बड़े कृतज्ञ हैं ।

विद्यालय के भवन का निर्माण-कार्य इसी मास में प्रारम्भ कर दिया जायगा, जिसका नक़शा स्थापत्य कला के आचार्य श्री श्रीशचन्द्र चटर्जी तथा एन० के० अग्रवाल ने तैयार किया है ।

ता० ८ जुलाई को विद्यालय खुल जायगा । हिन्दी मिडिल पास करके जो लड़के आवेंगे उनके लिये स्पेशल क्लास का विशेष प्रबन्ध किया गया है ।

आस-पास की ग्रामीण जनता की स्थिति पर विचार कर विद्यालय में सरकारी फ़ीस की केवल आधी फ़ीस रक्खी गई है ।

शहर के वायुमण्डल से दूर सारनाथ जैसे अन्तर्राष्ट्रीय पवित्र तथा स्वस्थ वातावरण में यह विद्यालय जनहित के आदर्शों से प्रेरित होकर ही काम कर रहा है।

मंत्री—
महाबोधि सभा

निम्नलिखित छात्र अपनी कक्षाओं में प्रथम उत्तीर्ण हुए हैं :—

८ वीं कक्षा—कृष्णकुमार राय
७ वीं कक्षा—देवेन्द्रबहादुर
६ वीं कक्षा—बद्रीप्रसाद
स्पेशल कक्षा—जगन्नाथप्रसाद
५ वीं कक्षा—रमाकान्त

आठवीं कक्षा के प्रथम छात्र को महास्थविर भिक्षु उ० कित्तिमा कक्षा की सभी पुस्तकें पारितोषिक रूप में देंगे।

श्री धर्मपाल छात्रवृत्ति

३) मासिक और २) मासिक की प्रथम और द्वितीय दो छात्रवृत्तियाँ १० मास तक उन छात्रों को दी जावेंगी जो एक निबन्ध-प्रतियोगिता में प्रथम और द्वितीय होंगे। इस वर्ष निबन्ध का विषय होगा "भगवान् बुद्ध"।

बुद्ध गया मन्दिर और कांग्रेस सरकार

बिहार में कांग्रेस सरकार की स्थापना होने पर बौद्धों को बड़ी आशा बँधी है कि अब सरकार गाँधीजी के विचारानुसार बुद्ध गया का मन्दिर बौद्धों के हाथ सौंप देगी। सीलोन (लंका) से जो डेपुटेशन देशरत्न बाबू राजेन्द्रप्रसादजी तथा प्रधान मन्त्री श्री श्रीकृष्णसिंह जी से मिला था और बुद्ध गया की माँग उनके सामने पेश की थी, उसे भी यही आशा दिलाई गई। कहा गया था कि हम शीघ्र ही असेम्बली में एक बिल पेश करेंगे जिसमें बुद्धगया-मन्दिर के सम्बन्ध में बौद्धों के अधिकार की रक्षा हो सके। किन्तु साल पूरा होने जा रहा है। अभी तक इस विषय में कांग्रेसी सरकार ने कुछ भी नहीं किया। हमें आशा है कि वर्त्तमान सरकार ५५ करोड़ नर-नारियों की माँग की उपेक्षा नहीं करेगी और शीघ्र ही इस ओर ध्यान देगी।

वैशाख-महोत्सव

अन्य बरसों की भाँति इस बरस भी संसार भर में 'बुद्ध-जयन्ती' मनाई गई। किन्तु हमारे लिये सबसे अधिक प्रसन्नता की बात है कि भारत में पिछले साल से अधिक स्थानों में जयन्ती मनाई गई। इससे जान पड़ता है कि बौद्ध-धर्म का भाव हमारी नस-नस में भरा है और समय आते ही वह स्फुटित हो उठेगा।

भिक्षु श्री राहुल सांकृत्यायन जी की तिब्बत-यात्रा

संसार में ऐसे बहुत से लोग हैं जिन्हें कुछ करके खाना हराम प्रतीत होता है और दूसरी ओर ऐसे भी लोग हैं जो अविराम कठिन परिश्रम करते हुए भी नहीं थकते और

समाज तथा देश के लिये सदा अपना सर ऊखल में डाले रहते हैं। हमारे पूज्य श्री राहुलजी दूसरी श्रेणी के मनुष्य हैं। अभी आप रूस की कठिन यात्रा से लौटे ही थे कि तिब्बत के लिये चल पड़े। तिब्बत की यात्रा करना जान से खेल करना है। आप बिना पूर्ण विश्राम लिये ही तिब्बत की ओर चल पड़े; फलतः मार्ग में आप कठिन रोग-ग्रस्त हो गये। किन्तु प्रसन्नता की बात है कि अब आप भले-चगे यात्रा कर रहे हैं। हमें पूर्ण आशा है कि त्रिरत्न के अनुभाव से आप सकुशल अपनी मातृभूमि को लौट आवेंगे।

बिहार सरकार की उदारता

इस वर्ष बिहार की कांग्रेसी सरकार ने तिब्बत में प्राचीन ग्रन्थों की खोज करने के लिए भिक्षु श्री राहुल सांकृत्यायनजी को छः हजार रुपये दिये हैं। हम सरकार की इस उदारता के लिये, जो उसका कर्त्तव्य था, धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि अन्य सरकारें भी इसका अनुकरण करेंगी।

बौद्ध-संस्थाओं से

भारत के भिन्न-भिन्न भागों में बहुत-सी बौद्ध-संस्थायें काम कर रही हैं। किन्तु यह दु:ख की बात यह है कि हम आपस में एक दूसरे के कामों का मूल्य नहीं देख पाते। अतः हम भारत की सभी छोटी बड़ी संस्थाओं से निवेदन करते हैं कि वे अपने कार्य्यों की मासिक रिपोर्ट की एक प्रति "धर्म-दूत" कार्य्यालय में भेज दिया करें, ताकि हम उसको उचित समय पर प्रकाशित कर सकें।

भूल-सुधार

पिछले मास के "धर्म-दूत" के टाइटिल पृष्ठ पर वैशाख की जगह चैत्र छप गया है। आशा है, पाठक इसे सुधार लेंगे।

ग्राहकों से

ग्राहकों को चाहिए कि पत्र-व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें।

बौद्ध-जगत्

—१४ मई को मूलगन्धकुटी विहार में, श्री श्रीप्रकाशजी के सभापतित्व में, बड़े समारोह से वैशाख महोत्सव मनाया गया।

—वैशाख-पूर्णिमा को महाबोधिविद्यालय के आचार्य श्री भिक्षु जगदीश काश्यप एम० ए० ने बुद्ध-गया में गरीबों को अन्नादि बाँटा।

—भिक्षु श्री आनन्द कौसल्यायन द्वारा अनूदित "धम्म-पदं" और श्री भिक्षु जगदीश काश्यपजी द्वारा अनूदित "उदान" नामक ग्रन्थ अगले मास तक प्रकाशित हो जायँगे।

—१४ और १५ मई को इटावा के थियोसोफिकल लीग द्वारा सनातनधर्म स्कूल में 'बुद्ध-जयन्ती' मनाई गई। वक्ताओं में हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर श्री भीखनलालजी आत्रेय, एम० ए०, डी० लिट्० का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

—महाबोधि विद्यालय जुलाई में खुलेगा। अतः नये छात्रों को, जो छात्रावास में रहना चाहते हों, अभी से ही पत्रव्यवहार करना चाहिए।

—महाबोधि सभा के प्रधान मन्त्री श्री देवप्रिय वलीसिंहजी अपना दौरा समाप्त कर कलकत्ता लौट आये। आपने वर्मा, पेनाङ्ग, सिंगापुर आदि जगहों में अनेकों लेक्चर दिये। सभी जगह आपका खूब स्वागत हुआ।

—महाबोधि सभा की ओर से "धर्मदूत" के सम्पादक श्री धर्म्मानन्दजी नैनीताल भेजे गये हैं। आपने वहाँ जाते ही सभा का एक ब्राञ्च स्थापित किया है और खूब लगन से प्रचार-कार्य कर रहे हैं।

—भदन्त श्री आनन्द कौसल्यायन जी बी० ए० चटगाँव से लौट आये। आप वहाँ एक उत्सव के सभापति होकर गये थे। किन्तु लोगों के श्रद्धा-पूर्ण आग्रह के कारण कुछ दिन अधिक टिकना पड़ा।

—बर्मीज मन्दिर सारनाथ के अध्यक्ष श्री भिक्षु कीत्तिमाजी इसी मास में बर्मा से यहाँ आनेवाले हैं। आप किसी आवश्यक काम से बर्मा गये और करीब चार मास के बाद लौट रहे हैं।

—ग्राम बंकवा, जिला बलिया, में १४ मई वैशाख-पूर्णिमा को श्री बद्रीप्रसाद पाण्डेय के सभापतित्व में 'बुद्ध-जयन्ती' मनाई गई। श्री गिरिजादत्तजी ने दो प्रस्ताव रखे; जो सर्वसम्मति से पास हो गये।

(१) अन्य त्यौहारों की भाँति वैशाख-पूर्णिमा को भी सरकार की ओर से छुट्टी करार दी जाय। (२) अन्य प्राचीन भाषाओं की तरह पाली की शिक्षा का भी प्रबन्ध होना चाहिए।

—युनिवर्सल बुद्ध सोसाइटी, बंगलोर की ओर से १४ मई को बड़े समारोह के साथ 'बुद्ध-जयन्ती' मनाई गई।

१४ और १५ मई को संसार भर में, खास कर बौद्ध-देशों में, बड़ी धूम-धाम से 'बुद्ध-जयन्ती' मनाई गई।

भारत में, कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, कानपुर, लखनऊ, कुशीनगर, चटगाँव आदि सैकड़ों जगह से 'बुद्ध-जयन्ती' मनाने के समाचार आ रहे हैं।

हैदराबाद (सिन्ध) में सत्संग और श्री मीरा हाई स्कूल की ओर से १४ ता० को 'बुद्ध-जयन्ती' मनाई गई। श्रीकृष्ण हाल और मीरा बिल्डिङ्ग बहुत ही अच्छी तरह सजाई गई थी। मीरा बिल्डिङ्ग आज 'गौतम-निवास' के रूप में परिणत कर दी गई थी। भगवान् बुद्ध के जीवन पर श्री सन्तदास मंघाराम ने बहुत ही अच्छा व्याख्यान दिया। मीरा स्कूल की लड़कियों ने आज गरीब अछूत बच्चों को अन्न-वस्त्र दिया तथा अस्पताल में जाकर रोगियों के बीच फल बाँटा। आज रात तक खूब धूम-धाम रही। मीरा स्कूल द्वारा प्रकाशित पैम्फ्लेट "Buddha the Healer" लोगों में बाँटा गया।

—सारनाथ में रहनेवाली अँगरेज महिला बहन वजिरा ने महाबोधि विद्यालय में छात्रों के लिये दो वृत्तियाँ दी हैं। ये वृत्तियाँ उन दो छात्रों को मिलेंगी जो भगवान् बुद्ध की जीवनी लिखने में प्रथम और द्वितीय आवेंगे। प्रथम आनेवाले को दस मास तक तीन रु० और द्वितीय आनेवाले को दस मास तक दो रुपये मासिक दिये जायँगे।

रजिस्ट्री की संख्या ए २७६२

सूचना

हिन्दी-प्रेमियों को यह सुनकर प्रसन्नता होगी कि त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप एम० ए० ने अनेक पाली के ग्रन्थों का हिन्दी-अनुवाद पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर दिया है। अब अगले वर्षों में "संयुत्तनिकाय" और "खुद्दकनिकाय (के मुख्य भागों)" का हिन्दी अनुवाद छप जायगा। महाबोधि सभा इन ग्रन्थों के सुन्दर प्रकाशन के लिये कटिबद्ध है, किन्तु यहाँ हिन्दी-प्रेमियों का भी कुछ कर्तव्य है जिसका पालन वे इस प्रकार कर सकते हैं—(१) पुस्तकों को खरीद और प्रचार कर, (२) आठ आना भेज महाबोधि-ग्रन्थमाला के स्थायी ग्राहक बन, (३) सौ या अधिक रुपया दे ग्रन्थमाला के संरक्षक बन।

स्थायी ग्राहकों को ग्रन्थमाला की पुस्तकें (मज्झिम निकाय, विनय-पिटक और दीघनिकाय) तीन-चौथाई दाम में मिलेंगी। संरक्षकों का नाम पुस्तक के साथ छाप दिया जायगा और उन्हें सभी पुस्तकें मुफ्त मिलेंगी।

हिन्दी में बौद्ध साहित्य

दीघ निकाय	५)
मज्झिम निकाय	६)
विनय-पिटक	६)
जातक कथा (प्रथम भाग)	१)
धम्मपद (प्रेस में)	≡)
तिब्बत में सवा बरस	३॥)
बुद्ध-वचन	।≈)
भगवान् हमारे गौतम बुद्ध	—)
उदान	(प्रेस में)
सुत्तनिपात	(")
मिलिन्द-प्रश्न	३॥)
वादन्याय (संस्कृत)	३)
बुद्धचर्य्या	५)
अभिधर्मकोष: (संस्कृत)	५)
वार्तिकालङ्कार (संस्कृत)	३)
तिब्बत में बौद्ध-धर्म	१॥)
बुद्ध और उनके अनुचर	१)
भगवान् बुद्ध की जीवनी	१)

मिलने का पता—

महाबोधि पुस्तक-भण्डार,
सारनाथ, बनारस।

प्रकाशक—धम्मजोति, महाबोधि-सभा, सारनाथ, बनारस।
मुद्रक—धम्मजोति, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, बनारस-ब्रांच।

धर्म-दूत

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्स

विषय-सूची

"पाप धर्मों को बाहर कर जो सदा स्मृतिमान् रहते हैं ;
सभी बन्धनों के कट जाने से जो बुद्ध हो गए हैं; संसार
में वही ब्राह्मण कहे जाते हैं"।

—भगवान् बुद्ध

वर्ष ४ }
अंक ५ }

भाद्रपद पूर्णिमा बु० सं० २४८२ / वि० सं० १९९५

{ वार्षिक
{ मूल्य ॥)

अहिंसा और ईश्वर

(ले०—आनन्द कौसल्यायन)

इधर गान्धीजी, प्रतीत होता है कि, अपने आप को कुछ निर्बल अनुभव कर रहे हैं। इसीसे उनके लेखों में 'ईश्वर' कुछ अधिक स्थान ग्रहण करता जा रहा है। 'निर्बल के बल राम'। 'शान्ति-सेना' के सम्बन्ध में लिखते हुए 'हरिजन' (ता० १८।६।३८) में गान्धीजी ने लिखा है :—

"शान्ति-सेना के सदस्य का, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, अहिंसा में जीवित विश्वास होना चाहिए। यह तभी सम्भव है जब कि ईश्वर में उसका जीवित विश्वास हो। अहिंसक व्यक्ति तो ईश्वर की कृपा और शक्ति के बिना कुछ कर ही नहीं सकता।"

ईश्वर और अहिंसा का यह गठजोड़ा क्यों ? न आदर्श की दृष्टि से ही यह उचित है, न व्यवहार की दृष्टि से। क्या ईश्वर-विश्वासियों ने ही अपने अहिंसक होने का सबूत दिया है ? इतिहास तो इस बात का साक्षी है कि ईश्वर-विश्वासी ही सबसे अधिक हिंसक रहे हैं। यह दूसरी बात है कि हिंसक लोगों को गान्धीजी ईश्वर-विश्वासी मानने से इनकार करें। फिर ३१ जुलाई के 'इन्डिपेन्डेन्ट इन्डिया' में "हरिजन" का एक उद्धरण यों है:—

"मेरी आकांक्षा सीमित है। परमात्मा ने मुझे शक्ति नहीं दी कि मैं संसार भर को अहिंसा के मार्ग पर चला सकूँ। लेकिन मैंने मान लिया है कि परमात्मा ने मुझे चुना है कि मैं भारत को उसके अनेक रोगों का इलाज करने के लिये अहिंसा की भेंट दूँ...। यदि ऐसा हुआ, तो मुझे विश्वास है कि परमात्मा मुझे बल देगा कि मैं अपने आप को दिवालिया स्वीकार कर सकूँ। और शायद जिस समय उस कार्य्य के लिये, जिसे मैं २५ साल तक करता रहा हूँ, मेरी आवश्यकता नहीं रहेगी उस समय मुझे परमात्मा उठा ही लेगा। मैं प्रकाश के लिये प्रार्थना कर रहा हूँ जो अन्धकार को दूर कर दे। जिन लोगों का अहिंसा में जीवित विश्वास हो, वह मेरे साथ प्रार्थना में शामिल हों।"

अहिंसा में जीवित विश्वास होना एक बात है, और ईश्वर में दूसरी।

ग्राहकों से निवेदन

जून मास के धर्मदूत के "नैनीताल आन्दोलन" नामक शीर्षक के कुछ अंश को लेकर किसी सज्जन ने आपत्ति की है। उसका समाधान अगले अंक में किया जायगा।
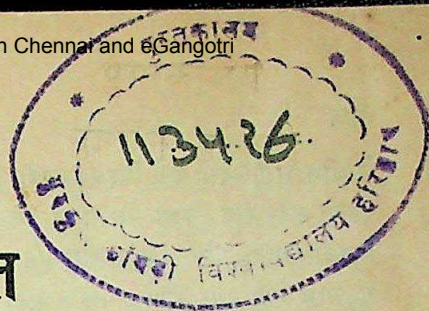
धर्म-दूत

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवलपरिपुन्नं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग (विनय पिटक)

"भिक्षुओ! सर्व साधारण के हित के लिये, लोगों को सुख पहुँचाने के लिये, उन पर दया करने के लिये और देवताओं और मनुष्यों का उपकार करने के लिये घूमो। भिक्षुओ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्थाओं में कल्याणकारक धर्म का, उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य्य का प्रकाश करो।"

सम्पादक—धम्मानन्द

वर्ष ४ | सारनाथ, सितम्बर बु० सं० २४८२ / ई० सं० १९३८ | अंक ५

क्या बौद्ध-धर्म भारत के पतन का कारण हुआ?

(लेखक—श्री कैकिनि, बी० ए०)

कहा जाता है कि महाराष्ट्र हिन्दूधर्म-परिषद में व्याख्यान देते समय डा० मुंजे ने कहा कि 'बौद्ध-धर्म का अहिंसा-प्रचार भारतवर्ष के पतन का मुख्य कारण हो रहा है", और उसके साथ यह भी कहा कि "यदि जाति-भेद की प्रथा न होती तो सब लोग मुसलमान हो जाते"।

सबसे पहले हम इसी बात को लें कि क्या भगवान् बुद्ध की शिक्षायें भारत के पतन का कारण हुईं? इतिहास से पता चलता है कि मौर्यकाल और गुप्तकाल भारतवर्ष के स्वर्ण-युग रहे हैं। इन दोनों ही राज्यों की स्थापना उस समय हुई, जब भगवान् बुद्ध अपने धर्म का प्रचार कर चुके थे और देश के अधिकांश लोग उसे अपना चुके थे। भारत ने अपनी संस्कृति को एक प्रकार से उन्हीं दिनों दुनिया में फैलाया।

यह कहना बिलकुल असंगत है कि बौद्ध-धर्म के अहिंसा-प्रचार से लोगों के शारीरिक बल और वीरता-भाव का ह्रास हुआ और इसी लिए विदेशी उन पर विजयी हुए। अरबों ने अपने समय के लगभग सारे ज्ञात-संसार को जीत लिया था; लेकिन भारतवर्ष से उन्हें अपना सा मुँह लेकर भागना पड़ा। प्रसिद्ध बाप्पा रावल की अधीनता में राजपूतों ने ऐसी मार मचाई कि अरबवाले सिन्ध से आगे न बढ़ सके। इस प्रकार भारतवासियों

ने तीन शताब्दियों तक विश्व-विजयी अरबों को देश के अन्दरूनी हिस्से में घुसने से रोक रक्खा और रोक रक्खा उस समय तक जब तक हिन्दुओं को उनके निजी व्यक्तिगत स्वार्थ, विश्वास घात और मिथ्या-विश्वास तथा जाति-भेद के निराधार-भेद ने विदेशियों का ग़ुलाम नहीं बना दिया। क्या शहाबुद्दीन के हाथों पृथ्वीराज चौहान, केवल कन्नौज के राजा जयचन्द के विश्वास-घात के कारण नहीं हारा था? कर्नल टाड ने लिखा है कि जब तुर्कों ने अफ़गानिस्तान पर हमला किया, जहाँ कि उस समय हिन्दू राज्य था, तो उन्होंने हिन्दू-सेना के पानी को पवित्र गोमाता के रक्त से 'अपवित्र' कर दिया; और इस प्रकार प्यास से मरते हुए हिन्दुओं पर सहज में ही विजय प्राप्त कर ली। क्या इससे बढ़कर भी अन्धविश्वास हो सकता है!

बौद्ध-धर्म ने कभी समुद्र पार जाना पाप नहीं ठहराया। जब देश में बौद्ध-धर्म नहीं रहा तो अटक, हिन्दू-भारत की अन्तिम सीमा समझ लिया गया था। इस प्रकार के मूर्खता-पूर्ण प्रतिबन्धों के कारण लोगों का दृष्टिकोण संकुचित हो गया और अवान्, बक्खड़ और जंजुआ आदि राजपूत और जाट जातियाँ, जो अफ़गानिस्तान तथा पश्चिमी पञ्जाब में रहती थीं, मुसलमान हो गईं। क्यों न हो जातीं? भारत के मुख्य हिस्से की आर्य-संस्कृति से उनका बिलकुल संबंध-विच्छेद हो गया था। क्या इस पतन के लिए भगवान् बुद्ध की शिक्षायें जिम्मेदार हैं?

आश्चर्य होता है कि डा० मुंजे जैसे हिन्दू-संगठन के नेता जाति-भेद का समर्थन कर रहे हैं! यदि भारत के इतिहास को ध्यानपूर्वक पढ़ा जाय तो यह बात सुगमतापूर्वक सिद्ध की जा सकती है कि जाति-भेद ही भारत की, और विशेष रूप से हिन्दुओं की, अवनति का कारण हुआ है। मुहम्मद कासिम की अधीनता में अरबों ने सिन्ध को कैसे जीता? इतिहास कहता है कि अपने स्वामी दाहिर (सिन्ध-नरेश) के विरुद्ध मोकबसिपा ने अरबों की सहायता की। सिन्ध के राजपूत राजा जाटों को बड़ी नीची निगाह से देखते थे और वेष-भूषादि के सम्बन्ध में इस वीर जाति पर तरह तरह के प्रतिबंध लगाते थे। परिणाम यह हुआ कि जाटों में से मोकबसिपा जैसे देश-द्रोही निकले, जिन्होंने सिन्ध के जीतने में अपने देश के शत्रुओं की सहायता की।

भारत में बौद्ध-धर्म का प्रभाव घटने पर बहुत से लोग फिर पौराणिक हिन्दू-धर्म को मानने लगे और उनने अपने आपको भिन्न भिन्न जातियों में विभक्त कर लिया। जिन लोगों के हाथ में शक्ति थी, उन्होंने अपने आप को ऊँची जाति का कहा और जिन बेचारों के पास शक्ति या प्रभाव नहीं था, वे नीच जाति करार दे दिये गये। इस प्रकार व्रात्य और लौकिक ब्राह्मण सदृश अनेक जातियाँ एक प्रकार से अछूत ही बना दी गईं। जब इस्लाम धर्म आया, तो अनेक लोगों ने प्रसन्नता-पूर्वक उसका स्वागत किया; क्योंकि इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेने से उनकी सामाजिक स्थिति ऊँची हो जाती थी। कहते हैं कि, पूर्वी बंगाल भी इसी कारण मुसलमान हो गया। यदि जाति-पाँति के कड़े नियमों के कारण पुरी के पुरोहितों ने कालचंद को नवाब की लड़की से शादी करने से न रोका होता, तो शायद बंगाल के हिन्दुओं को काला पहाड़ के अत्याचार न सहने पड़ते और बंगाल में जो मुस्लिम आबादी का आधिक्य है वह भी न होता।

यदि हम भारत की सामाजिक समस्याओं का ध्यानपूर्वक अध्ययन करें, तो हमें पता चलेगा कि हिन्दू-समाज में जो इतने 'अछूत' पाये जाते हैं उनकी जिम्मेदारी भी जाति-भेद के ही सिर पर है। सारी अछूत जातियाँ कहती हैं, कि उनके पूर्वज ऊँची जातियों के थे। लेकिन, जाति-भेद के किन्हीं विशिष्ट नियमों का पालन न कर सकने पर उन्हें सीढ़ी के नीचे ढकेल दिया गया। तामिल अछूत संतकवि के प्रपितामह एक ब्राह्मण थे, जिन्हें, केवल इस कारण 'अछूत' बना दिया गया, कि उन्होंने अकाल के समय मृत्यु के ग्रास से बचने के लिए कोई निषिद्ध चीज खा ली थी। मैं एक तरुण भंगी को जानता हूँ, जिसने बताया कि उसका दादा ऊँची जाति का लिंगायत था। अकाल के समय वह बीजापुर से समुद्र-तट पर चला गया। किसी हिन्दू ने जब उसकी सहायता न की, तब वह अछूत जाति में शामिल होने पर मजबूर हुआ। इस प्रकार व्यक्ति ही नहीं, अनेक छोटी छोटी जातियाँ भी भ्रातृ-भाव के अभाव में या तो नीच जातियाँ हो गईं अथवा अन्य धर्मावलम्बी।

यदि व्यक्तिगत ईर्ष्या और जातिभेद ने मराठा-साम्राज्य का विनाश न कर दिया होता, तो कौन कह सकता है कि आज दिल्ली के सिंहासन पर मराठे विराजमान न होते! ईस्ट इंडिया कम्पनी के पुराने लेखों में एक जगह ये पंक्तियाँ हैं :—

"मई १७७२ में बम्बई के गवर्नर विलियम हार्नबी ने फिर सर जान कोलब्रुक को लिखा""राजनैतिक परिस्थिति की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा—पारस्परिक कलह के कारण मराठा साम्राज्य के विनाश की आशा की जा सकती है। यदि फतहसिंह के साथ मैं ऐसी सन्धि कर सका जिसमें कम्पनी को लाभ हो तो ऐसा करने के लिए मैं अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दूँगा। "शुभ दिन" "अशुभ दिन" की बाधा आ पड़ने से उसके यहाँ रहते मैं सन्धि न कर सका।"

मालाबार की आधी आबादी आज मोपला मुसलमान न बनी होती, यदि आज से तीन सौ साल पहले ज़मोरिन ने अपनी प्रजा को मुसलमान न बनवाया होता, ताकि उसकी नौ-सेना के लिए सिपाही मिल सकें; क्योंकि हिन्दू रहते वह जाति-भेद से उत्पन्न खान-पान के नियमों के कारण समुद्र-यात्री न बन सकते थे। आज भी अँगरेज़ी सरकार समुद्र-तट पर रहनेवाली भंडारी आदि जातियों को अपनी नौ-सेना में भर्ती नहीं करती और इसके कारण हैं उनके खान-पान के बंधन।

पता नहीं, यह जानकर डा० मुञ्जे को आश्चर्य के साथ प्रसन्नता होगी या नहीं कि यदि अँगरेज़ी सरकार की वर्तमान सेना और उसके पिछले "महान् युद्ध" के कार्यों पर दृष्टि डाली जाय, तो उससे यह बात सिद्ध होती है कि भगवान् बुद्ध के मत को किसी हद तक भी माननेवाले आज के हिन्दुओं ने, अरब के पैग़म्बर के अनुयायियों की अपेक्षा, अधिक साहस और सैनिक-बल का परिचय दिया है।

(माडर्न रिव्यू से संकलित)

भदन्त आनन्द कौसल्यायन जी द्वारा अनूदित है।

जीवन का रहस्य

(लेखक—धम्मानन्द, लङ्का)

मनुष्य एक प्रदीप है और जीवन उसकी दीपशिखा। अस्तु! हम जीवन के स्रोत को दो रूपों में देखते हैं, समाज तथा संन्यास। वस्तुत: सामाजिक जीवन संन्यास अर्थात् एकान्त जीवन से भिन्न नहीं है। सामाजिक जीवन ही एकान्त जीवन का कारण होता है। जीवनधारा में अनेक परिवर्तन होते रहते हैं। वह एक ओर से दूसरी ओर बहती रहती है। कभी समाज से एकान्त की ओर और कभी एकान्तवास से समाज की ओर। समाज व्यक्ति ही से बनता है; पर "व्यक्ति" समाज से कुछ और है; अत: सामाजिक व्यवहार से मनुष्य सदा सन्तुष्ट नहीं रहता। वह उससे विपरीत भी आचरण करता है। वह अपने ही परिवार, अपने ही कुटुम्ब एवं अपनी ही सम्पत्ति को अपने आप छोड़कर विवेक की ओर झुकता रहता है। "सुखो विवेको तुट्ठस्स" कहकर वह अपना सन्तोष प्रकट करता है। सन्तुष्ट पुरुष को "विवेक" सुख है, अथवा विवेकी पुरुष के लिये सन्तोष ही सुख है। वह अपने उमङ्ग में कहता है:—

> "सुसुखं वत जीवाम, येसं नो नत्थि किञ्चनं
> पीतिभक्खा भविस्साम देवा आभस्सरा यथा।"

"जिन हम लोगों के पास कुछ नहीं, अहो! वह हम कितना सुख से जीवन बिता रहे हैं। हम आभस्सर देवताओं की भाँति 'प्रीतिभक्षक' हैं।"

संसार की यह कैसी विचित्र गति है! संयोग के बाद वियोग। ग्रहण के बाद हरण!

मनुष्य वास्तव में सामाजिक जन्तु है; पर उसका "व्यक्तिगत-गमनागमन" समाज के लिये रहस्यमय है। वह सहसा समाज में उपस्थित होता है और सहसा विलीन हो जाता है; अत: व्यक्तित्व समाज से सम्पर्क रखने के साथ ही साथ विभिन्नता भी रखता है। सामाजिक सङ्गठन मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन में एक विशेष घटना है। समाज व्यक्ति का अङ्ग है, तथा व्यक्ति समाज का कारण।

"प्रतीत्य समुत्पाद" के नियम पर सब वस्तु आश्रित हैं। परस्पराधीनता सर्वत्र व्यापक है; अतएव व्यक्ति को समझने के लिए समाज का सहारा तथा समाज को समझने के लिए व्यक्ति का सहारा लेना पड़ता है। किन्तु, समाज के द्वारा ही हम व्यक्ति की तुलना नहीं कर सकते। व्यक्तित्व का ठीक परिचायक बनने के लिए उसको एकान्त में ले जाना अनिवार्य है। जब मनुष्य सामाजिक जीवन की पूर्ण अनुभूति प्राप्त कर लेता है, तो उसके सामने यह समस्या उपस्थित होती है कि सामाजिक जीवन से परे कोई स्वतन्त्र जीवन है या नहीं। फलत: वह इस निर्णय पर पहुँचता है कि इस जीवन में अनेक स्रोत हैं और एकान्तजीवन भी उन्हीं में से एक है। मनुष्य अपनी व्यक्तिगत शान्ति के लिये एकान्तवास का आश्रय लेता है।

सचे लभेथ निपकं सहायं
सद्धिं चरं साधु विहारि धीरं
नोचे लभेथ निपकं सहायं
एको चरे खग्गविसाणकप्पो

"यदि मुझे ज्ञानी साथी मिलें तो भले ही मैं उनके साथ विचरण करूँ, अन्यथा जङ्गल में 'एकचर' हो रहूँगा।"

"ठिते मज्झन्तिके काले
सन्निसिन्नेसु पक्खिसु
सनतेव ब्रहारञ्ञं
सा रती पटिभाति मं"

"मध्याह्न काल में 'महावन' में जब पशु पक्षी तक नीरवता-पूर्वक विश्राम कर रहे हैं, उस समय मेरा आनन्द अपार है।" यही एकान्त जीवन का सुख है, यही है उसका रहस्य।

समाज में रहनेवाले मनुष्य के लिये, जीवन एक संग्राम है। एकान्त-निवासी के लिए जीवन एक पहेली है। जय, पराजय सामाजिक जीवन की विशेषता है। एकान्तवासी के लिये जय, पराजय की भावना नहीं होती। वह "उपसन्तो सुखं सेति हित्वा जय पराजयं" के अनुसार जय पराजय को अन्यमनस्क दृष्टि से देखते हुए, सुख एवं शान्त जीवन व्यतीत करता है।

वास्तव में जीवन को पहचान लेने के लिये, अर्थात् उसकी मर्यादा को जान लेने के लिये मृत्यु की भी आवश्यकता होती है। एकान्तवासी इस सिद्धान्त को जानते हुए, उस पार की सम्पत्ति को अपनाने के लिये प्रबल आकांक्षा रखता है। मृत्यु से व्यर्थ ही मनुष्य घबड़ाते हैं। जब हम जानते हैं कि वही हमारा लक्ष्य है, और जीवन-रूपी दीपशिखा किसी न किसी समय अवश्य विलीन हो जाती है, तो उससे डरना या उससे घृणा करना मूर्खता है।

किसी वस्तु का मूल्य उसकी मर्यादा पर सन्निहित है; अतएव जीवन का मूल्य मृत्यु पर। जो बुद्धिमान् उस अन्तिम निर्णय के लिये तैयार रहते हैं; उसकी प्रतीक्षा करते रहते हैं वे ही जीवन के ध्येय को जानते हैं। जीवन की आशा जब तक हममें बनी रहती है, तब तक हममें कोई साहस नहीं हो सकता। धार्मिक, राष्ट्रीय तथा सामाजिक क्षेत्र में वही सेवा कर सकते हैं, जो जीवन के ध्येय को जानते हैं, और जीवन के ध्येय को वही जानते हैं, जो मृत्यु की अनिवार्यता को समझते हैं। मृत्यु जीवन का अन्त नहीं, बल्कि उसका लक्ष्य है। "मरने को जग जीता है"। जीवन किस लिए? मृत्यु के लिए। जन्म की जितनी आवश्यकता है, मृत्यु की भी उतनी ही है। जन्म जितना स्वाभाविक है मृत्यु भी उतना ही है।

धिक्कार है उसे जो अपनी मुक्ति से डरता है। धन्य है वह जो उस पार की सम्पत्ति का अधिकारी बनने के लिये व्यग्र रहता है; अतः हमारा लक्ष्य केवल एक बात को समझना है। वह समझना है क्या? "जीवन का रहस्य"।

सुदत्त की जोताई

(लेखक—भिक्षु धर्मरत्न)

अवन्ति के 'कुररघर' प्रदेश में महासुभूति नाम का एक ब्राह्मण रहता था। वह उस प्रदेश का मुखिया, और साथ ही साथ राजा बिम्बिसार की ओर से निर्वाचित न्यायकर्ता भी था।

उसके खेतों की जोताई का काम सुदत्त नामक एक ब्राह्मण युवक करता था। एक दिन सुदत्त सुभूति के खेत को जोतते हुए गा रहा था। इस गाने का यह कारण था कि सुभूति ने उसे अपना दामाद चुना था। उस समय की यह एक प्रथा थी कि विवाह के पश्चात् पति अपनी नव वधू को मिट्टी की चार गोलियाँ देता था, जिनमें से एक में गोशाले की धूलि, दूसरी में कई प्रकार के बीज, तीसरी में श्मशान की मिट्टी तथा चौथी में पूजासन की धूलि भरी रहती थी। जब नव-वधू इन चारों में से किसी एक को छू लेती थी, तो उसके अनुसार उसके परिवार के भविष्य की भी कल्पना कर ली जाती थी। पहली गोली को छूने से गौ-सम्पत्ति की वृद्धि, दूसरी को छूने से धान्य की वृद्धि, तीसरी को छूने से परिवार का नाश तथा चौथी को छूने से बाल-बच्चों के याजक और पुरोहित होने की बात सूचित होती थी।

इस प्रचलित प्रथा के अनुसार जब सुदत्त ने अपनी नव-वधू को चार गोलयाँ प्रदान कीं, तो उसने पूजासन की धूलि से भरी हुई गोली को छू लिया। सुदत्त की कामना भी यही थी। क्योंकि, वह समझा था :—यद्यपि जीवन-यात्रा के लिए धन-धान्य तथा अन्य वस्तुओं की भी आवश्यकता है, तथापि धार्मिक जीवन इन सब की अपेक्षा अधिक सुखमय है। सुदत्त के गाने का भी यही एक विशेष कारण था।

सुदत्त आनन्द से गाता हुआ हल चला रहा था, कि उसका हल अकस्मात् एक खरगोश के बिल से जा लगा। खरगोश भाग निकला, लेकिन वह पीछे मुड़कर अपने बच्चों की तरफ देखता था। सुदत्त ने छड़ी को उठाते हुए उसका पीछा किया, और वह उसका काम तमाम कर देता, यदि उसके कान में ये शब्द न पड़ते "मित्र! मित्र! ठहरो, ठहरो; उस बेचारे ने तुम्हारी क्या हानि की है?"

सुदत्त ने ठहरकर कहा "खरगोश ने मेरा कोई नुकसान तो नहीं किया है, हाँ केवल इतना है कि वह मेरे स्वामी के खेतों में रहता है।"

मुड़े हुए इस शान्तमूर्ति को देखकर सुदत्त को मालूम हुआ कि यह संसार से विरक्त एक श्रमण है। हाँ, वे स्वयं भगवान् बुद्ध के प्रधान शिष्य अनुरुद्ध थे। भिक्षु ने युवक से प्रसन्न होकर मानो उसे निर्दोषी ठहराते हुए पूछा "सम्भव है कि तुम इसका मांस खाना चाहते हो।"

युवक ने कहा "भन्ते ऐसी बात नहीं, इस मौसम में इसका मांस नहीं खाया जाता। मैंने केवल विनोद के लिये इसका पीछा किया था। खरगोश दौड़ने में बहुत तेज होता है; और बहुत कम लोग उसे पा सकते हैं।"

आयुष्मान् अनुरुद्ध ने कहा "मान लो, तुम कई बच्चों के पिता हो, यदि कोई एक भयानक जानवर उन बच्चों को मार डाले तो तुम पर क्या बीतेगी ?"

सुदत्त ने कहा "वैसी दशा में मैं अपनी जान की परवाह न करके उससे लड़ूँगा।"

स्थविर ने कहा "तुम तो बड़े वीर हो। लेकिन, हाँ, यदि वह जानवर तुम्हारे माता-पिता तथा बाल-बच्चों को मारकर, तुम्हें अपनी विपत्ति पर अश्रुपात करने के लिये छोड़ दें तो, तुम्हारी क्या दशा होगी ?"

युवक लजा गया। उसके मन में इस प्रकार के विचार उठते ही न थे। वह अपने से निर्बलों का ख्याल करना जानता ही न था। आत्मविनोद के लिये दूसरों को दुःख पहुँचाने में, वह जरा भी हिचकता न था। वह था तो साहसी लेकिन उसमें एक कमी रह गई थी।

अनुरुद्ध ने विचार किया "यह भद्र स्वभाव का युवक है, लेकिन पथ-भ्रष्ट हो गया है। यदि इसे सन्मार्ग पर न लाऊँ, तो इसके पुरुषत्व तथा शक्ति से बड़ी हानि हो सकती है। यदि मैं तथागत के शुभ सन्देश का परिचय इसे दे दूँ तो इससे कितना कल्याण हो सकता है।" इस प्रकार विचार कर, स्थविर ने सुदत्त से कहा "क्या तुमने — प्राणियों के प्रति क्या आचरण होना चाहिए--इस विषय में, भगवान् बुद्ध का उपदेश कभी सुना है ? उन्होंने इस प्रकार कहा है "छोटे, बड़े; बलवान् तथा बलहीन—इन सब के प्रति समान प्रेम रखते हुए शान्तिपूर्वक जीवन निर्वाह करो।"

"संसार के अन्य सभी प्राणियों की भाँति इस खरगोश के हृदय में भी अनेक कामनाएँ और भावनाएँ हैं। वह भी तुम्हारी ही तरह जन्म, जरा तथा मृत्यु के वश में है। तुम सदा बलिष्ठ तथा बलवान् नहीं रह सकते। कुछ वर्ष पहले तुम निरे बच्चे थे और इतने असहाय कि माता पिता की देख-रेख के बिना आज तुम्हारा कोई निशान भी न रहता। तुम अपने अतीत को भूल कर, भविष्य की ओर दृष्टिपात किये बिना, वर्तमान को ही देखते हो। जिस प्रकार तुम्हें अपनी उस शैशवावस्था की याद नहीं है, जब कि तुम अपनी माता की गोद में आश्रय लेते थे; उसी प्रकार तुम्हें अपने पूर्व जन्मों की भी सुधि नहीं है, जब कि तुम्हारे चरित्र तथा मनोभावों का क्रमिक विकास हुआ था।"

युवक ने कहा "भन्ते ! आप तो एक आश्चर्यजनक विभूति हैं। मैं आपका सदुपदेश सुनना चाहता हूँ।"

श्रमण ने अपने उपदेश का क्रम स्थिर रखते हुए कहा "हमारे परम गुरु बुद्ध भी जीवन की प्रत्येक श्रेणी में हो आये थे। उन्होंने अपनी जीवन-धारा को इस प्रकार घुमाया जिससे कि वे विकसित होते-होते एक दिन विकाश की चरम-सीमा पर पहुँच गये और बुद्धत्व का प्रतिलाभ कर निर्वाण को प्राप्त हो गये।

कई कल्प पहले, एक क्षुद्र प्राणी के रूप में उन्होंने इस संसार में अपना जीवन आरम्भ किया था। पक्षी के रूप में वे आकाश में उड़ते थे, मछली के रूप में वे जल में विचरते थे। इस प्रकार अपने कर्मों के अनुसार वे भी भव-चक्र में चक्कर काटते थे।

कहते हैं कि एक बार उन्होंने एक खरगोश के रूप में भी जन्म लिया था। क्या तुमने उस कहानी को कभी सुना नहीं है ?"

युवक ने कहा "भन्ते ! नहीं, कृपया आप मुझे सुनावें।"

[क्रमशः]

'सात वर्ष बाद'

(ले०—गिरिजादत्त 'एक भारतीय बौद्ध')

"छन्न ! अब तुम जाओ, और छोड़ दो मुझे इस निरीह जंगल में सत्य की खोज के लिये !"

यह कहकर, एक आन्तरिक तेज से दीप्यमान् सिद्धार्थ चल दिये। उनके नेत्र सत्य के प्रचंड उत्साह से देदीप्यमान हो रहे थे। उनका यौवन-सौन्दर्य उस पवित्र तेज में परिवर्त्तित हो गया था, जो उनके श्री-मुख पर दृष्टिगोचर हो रहा था।

× × × ×

राजकुमार सिद्धार्थ अब मुनि सिद्धार्थ हो गये थे। वे सत्य की खोज में बावले से घूम रहे थे। कितने पुत्रहीन राजा मिले, जिन्होंने सिद्धार्थ को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहा, लेकिन समस्त वैभवों को तिलांजलि देकर सत्य की खोज में घूमनेवाला वह राजकुमार सबके ऐश्वर्य को ठुकराता रहा। जन-पथ पर उनके पीछे भीड़ लग जाती; बाल-वृद्ध उनके लिये मार्ग छोड़ देते, उनके भिक्षापात्र में भिक्षा डालकर अपने को कृतार्थ समझते।

विद्वानों के पास गये, लेकिन उनकी वह प्यास न बुझी। तदनन्तर बिल्व-वन में उन्होंने लगातार छः वर्ष तक उग्र तपस्या की, लेकिन जिसकी खोज में चले थे—उसे प्राप्त न कर सके। अन्ततः वे वहाँ से भी चल दिये।

'बोधि-वृक्ष' निकट आये। मुनि ने उसे देखा, और साथ ही देखा समस्त दुःखमय संसार को ! पृथ्वी कंपायमान होने लगी, और डर गया विषयों का पोषक, मृत्यु का प्रेरक, तथा सत्य का शत्रु ! मुनि वृक्ष के नीचे शान्त बैठे रहे। समस्त दुष्ट आत्माओं ने उन पर एक साथ आक्रमण किया, पर नारकीय ज्वालाएँ सुगन्धित पवन के झोंकों में परिवर्त्तित हो गईं। फल उलटा हुआ। मार पराजित होकर भागा। एक अलौकिक कान्ति दिशाओं में विहार करने लगी।

मुनि ने खोज लिया, और समझ लिया जीवन के रहस्य को। वे बोल उठे—धर्म सत्य है, धर्म ही मनुष्यों को अज्ञान, पाप और दुःखों से बचाता है। धन्य है वह जिसने धर्म को समझ लिया। धन्य है वह जो किसी को हानि नहीं पहुँचाता ! धन्य है वह जिसने पापों पर विजय प्राप्त की है। वही महापुरुष है–ज्ञानी है–बुद्ध है। मुनि सिद्धार्थ 'बुद्ध' हो गये।

बुद्ध अब देश हित धर्म-प्रचार के लिए घूमने लगे। उनके हज़ारों शिष्य हुए। बड़े बड़े राजा, राजपुत्र, धनी सेठ-साहूकार आदि उनके शिष्य हुए, और भिक्षु होकर चारों दिशाओं में मानवता का प्रचार करने लगे।

× × × ×

भगवान् बुद्ध अपनी-शिष्य-मंडली के साथ बैठे थे। वे उन्हें अष्टांग-मार्ग का उपदेश दे रहे थे। एकाएक घोड़े पर सवार एक मनुष्य आया और बुद्ध के चरणों पर नतमस्तक हो कपिलवस्तु चलने के लिए प्रेरित किया। बुद्ध ने स्वीकार कर लिया।

कपिलवस्तु में उल्लास था। सबके जिह्वा पर यही था कि पिता का आतिथ्य स्वीकार करके भगवान् बुद्ध सात वर्ष बाद लौट रहे हैं। बुद्ध अपने शिष्यों के सहित आये, और डेरा डाले एक कुंज में! राजा शुद्धोदन अपने पुत्र के तेज और सौन्दर्य को दूर से देखकर गद्गद हो गये। वे मन ही मन कह रहे थे—"कुमार सिद्धार्थ का ऐसा ही रूप रंग था—परन्तु यह महामुनि अब सिद्धार्थ नहीं रहा। क्या मैं इसे फिर अपना पुत्र कहने का साहस कर सकता हूँ?"

प्रातःकाल बुद्ध भिक्षा-पात्र लेकर नगर में भिक्षा के लिये चले। नगर में हाहाकार मच गया।

राजा ने कहा—"वत्स गौतम! ऐसा न करो! मैं तुम्हारे क्या, सब भिक्षुओं के भोजन का प्रबंध करा दूँगा।"

"मैं क्या करूँ—यह हमारी धर्म-परिपाटी है।"

"पर तुम उस राजवंश के हो, जिसने कभी भिक्षा नहीं माँगी।"

"मैं उस बुद्ध-वंश में से हूँ, जो सदा भिक्षा-वृत्ति पर संतोष करता आया है।"

राजा निरुत्तर हो गए, और उन्हें राजमहल में ले आये।

मलिन वस्त्र और धूलि-धूसरित, केशविहीना यशोधरा—मूर्त्तिमती वियोग और विषाद की छाया, चुपचाप खड़ी भगवान् बुद्ध को एकटक देख रही थी। बुद्ध उसके पास गये—और देखा उसको इस वेश-भूषा में। वे इसका रहस्य समझ गये और बोले—"तुम धन्य हो और पुण्यात्मा हो। तुम्हारी पवित्रता, सुशीलता और भक्ति ने मुझे लाभ पहुँचाया है और मैं सत्यज्ञान को प्राप्त कर चुका हूँ। तुम्हारा मातृत्व भी धन्य है। तुम्हारे पुत्र को मैं ऐसी चीज़ दूँगा, जो नाशवान् न हो, और जो उसे शोक या चिन्ता में न डाले। यदि उसमें योग्यता हुई तो मैं उसे चारों सत्य समझाऊँगा।"

बालक वहीं खड़ा था। बोला—"मैं योग्य बनूँगा।"

बुद्ध ने कहा—"तुम्हारा कल्याण हो, तुम मेरे साथ चलो।"

ऐसा कहकर बालक को अग्रसर कर भगवान् बुद्ध यशोधरा के महल से बाहर आये, और यशोधरा!

वह अपने एकमात्र सप्तवर्षीय धन को गँवाकर ठगी सी खड़ी रह गई।

सम्पादकीय वक्तव्य

यह बड़े हर्ष की बात है कि हमारा साहित्यिक क्षेत्र दिन प्रति दिन विकसित होता जा रहा है।

महाबोधि-सभा उन संस्थाओं में से एक है जो भारत में धर्म एवं हिन्दी-साहित्य-प्रचार में निरत है।

साहित्यिक संसार में बौद्ध साहित्य का एक विशेष स्थान है। इसका शरीर अनेक प्राचीन तथा अर्वाचीन भाषाओं में व्याप्त है। उनमें से पालि-संस्कृत, चीनी और तिब्बती विशेष उल्लेखनीय हैं। बौद्ध सिद्धान्त का पूर्ण परिचय पाने के लिये इन चारो भाषाओं का अध्ययन आवश्यक है। अमेरिका के सुप्रसिद्ध लेखक राइट गोडर्ड (Wright Goddard) ने इन चारों भाषाओं का संक्षिप्त परिचय, Buddhist Bible नामक एक पुस्तक के द्वारा व्यक्त किया है, जो हाल ही में अँगरेजी में प्रकाशित हुई है। इसका अनुवाद हिन्दी में होना उचित है।

भारतीय बौद्ध भाइयों के उद्योग एवं सहयोग के फल-स्वरूप पालि और तिब्बती साहित्य का अनुवाद क्रमशः हिन्दी में हो रहा है। इस महत्त्वपूर्ण कार्य का श्रेय विशेष कर भदन्त राहुल संकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौशल्यायन तथा भदन्त जगदीश काश्यप जी को है। देशभक्त राहुलजी इस क्षेत्र में इतनी संलग्नतापूर्वक काम कर रहे हैं कि मानो वे समस्त तिब्बती विद्याविभूति का स्वागत करना चाहते हैं। इन देशबन्धु, भाषा-प्रेमी, सज्जनों की अविरल चेष्टा से त्रिपिटक की बहुत सी पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद हो चुका है। आशा है, इन्हीं के जीवन में ही बौद्ध-संसार का साहित्य हमारी राष्ट्रभाषा का बाना पहन लेगा।

उधर राहुलजी के अदम्य उत्साह के फल-स्वरूप हिमालय के उस पार छिपी हुई सम्पत्ति के हम अधिकारी बन रहे हैं, इधर अन्य सुयोग्य लेखकों द्वारा पालि त्रिपिटक हिन्दी में अनूदित हो रहा है।

हाल ही में, जगदीश काश्यपजी ने 'उदान' नामक पुस्तक का मूल-पालि से हिन्दी में अनुवाद किया है। उदान का अर्थ है प्रीतिवाक्य, अर्थात् वह कथन जो मनुष्य जोश में आकर कह उठता है। किसी विशेष घटना के समय भगवान् के मुखमण्डल से रसात्मक एवं उपदेशात्मक वचनों की जो मन्दाकिनी बही थी उसी का संग्रह 'उदान' है।

यह पालि-साहित्य का एक सुन्दर ग्रन्थ है। जब मनुष्य व्यग्र तथा चिन्तित हो जाता है तब उसे किसी शान्तिदायक साधन की आवश्यकता होती है। पुस्तक पढ़ना भी उन साधनों में से एक है। जो व्यथित व्यक्ति की शान्ति के लिये एक उत्कृष्ट साधन हैं और विशेषकर उदान ऐसी पुस्तक। विश्व के पुस्तकालय में ऐसी पुस्तकें सचमुच दुर्लभ हैं। पुस्तकों में बहुत सी पुस्तकें ऐसी होती हैं जो पूर्ण रसास्वादन से वञ्चित रहती हैं। जो पुस्तक सारगर्भित, ओजपूर्ण एवं रसात्मक है वही मनुष्य के विकास का कारण हो सकती है। एक अमूल्य ग्रन्थ का सदुपयोग मनुष्य के जीवन की विशेष घटना है। पुस्तक के विषय में लिखते हुए 'जॉन रस्किन' कहते हैं—"The author has something

which he perceives to be true and useful, or helpfully beautiful; so far as he knows no one has yet said it; so far as he knows no one else can say it. He is bound to say it clearly and melodiously, if he may; clearly at all events. In the sum of his life he finds this to be the thing or group of things manifest to him,—this piece of true knowledge or sight which his share of sunshine and earth has permitted him to seize." अर्थात् "लेखक का पूर्ण विश्वास है कि उनमें सर्वथा सत्यमय, सफल और रसात्मक वस्तुओं का समावेश है। जहाँ तक उन्हें मालूम है उस बात को किसी ने कहा नहीं, और न कह सकता है; अतः वे उसे सम्यक् प्रकार से प्रकाशन करने के लिये बाध्य हैं। उनकी जीवन की परिधि में—वही एकमात्र वस्तु है, अर्थात् सामग्री है जो उन्हें प्रत्यक्ष है। यही एकमात्र ज्ञानविशेष उनके जीवन का कारण अर्थात् मूल्य है।" इस कथन की पुष्टि करने में 'उदान' सर्वथा समर्थ है। उदान की विशेषता एवं महत्ता में कोई आश्चर्य नहीं। वह बुद्धवाणी है।

× × × × ×

"Universal Buddha Society"

जनवरी १९३७ में मैसूर में 'युनिवर्सल बुद्ध सोसाइटी' नामक एक बौद्ध-संस्था कायम की गई। और 'मैसूर रजिस्ट्रेशन एक्ट' के अनुसार उसकी रजिस्टरी भी की गई। प्रो० धर्मानन्द कौसम्बि सभा के अवैतनिक सभापति, श्री चरि बी०ए०, बी०एल० सभापति तथा श्री रामचन्द्रराओ विन्डिया, और प्रो० बी० एम० श्री कन्तिया एम० ए०, बी० एल० उपसभापति हैं। संस्था में क़रीब ३० मेम्बर हैं। यह बड़े हर्ष की बात है कि 'युनिवर्सल बुद्ध सोसाइटी' धर्म-प्रचार के कार्य में बड़ी लगन से काम कर रही है। यह विशेष रूप से सिलोन से सम्बन्ध रखती है, जहाँ के विद्वान् स्वामी धर्मानन्द, कोलम्बो युनिवर्सिटी के पालि प्रोफ़ेसर, भदन्त सिध्यार्थ एम० ए०, मद्रास महाबोधि सभा के प्रतिनिधि, एन० सोनानन्द तथा विश्वविख्यात वक्ता स्वामी नारदजी सोसाइटी से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं।

हर्ष है बौद्ध-धर्म अपने उचित पद को प्राप्त कर रहा है। समस्त संसार की साधारण सम्पत्ति के रूप में परिणत हो रहा है। अपना प्रभुत्व संसार में पुनः स्थापित करने में अग्रसर हो रहा है। संस्थाओं की संख्या बढ़ती जा रही है। बुद्ध की दया का सन्देश समस्त संसार में गूँज रहा है। अभी योरप से एक ईसाई (पादरी) बौद्ध-धर्म से प्रभावान्वित होकर बौद्ध भिक्षु बनने के उद्देश्य से सिलोन को ओर रवाना हुए हैं। अस्तु। हमारी आन्तरिक इच्छा है शरणगवेषी-समस्त प्राणिमात्र भगवान् बुद्ध को शरण में आकर प्रतिष्ठित होवें। बुद्धं शरणं गच्छामि।

रजिस्ट्री की संख्या ए २७६२

सूचना

हिन्दी-प्रेमियों को यह सुनकर प्रसन्नता होगी कि त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप एम० ए० ने अनेक पाली-ग्रन्थों का हिन्दी-अनुवाद पाठकों के सम्मुख उपस्थित किया है। अब अगले वर्षों में "संयुत्तनिकाय" और "खुद्दकनिकाय (के मुख्य भागों)" का हिन्दी अनुवाद छप जायगा। महाबोधि सभा इन ग्रन्थों के सुन्दर प्रकाशन के लिये कटिबद्ध है, किन्तु यहाँ हिन्दी-प्रेमियों का भी कुछ कर्तव्य है जिसका पालन वे इस प्रकार कर सकते हैं—(१) पुस्तकों को खरीद कर और उनका प्रचार कर, (२) आठ आना भेज महाबोधि-ग्रन्थमाला के स्थायी ग्राहक बनकर, (३) सौ या अधिक रुपया दे ग्रन्थमाला के संरक्षक बन।

स्थायी ग्राहकों को ग्रन्थमाला की पुस्तकें 'मज्झिम निकाय', 'विनय-पिटक' और 'दीघनिकाय' तीन-चौथाई दाम में मिलेंगी। संरक्षकों का नाम पुस्तक के साथ छाप दिया जायगा और उन्हें सभी पुस्तकें मुफ्त मिलेंगी।

हिन्दी में बौद्ध साहित्य

दीघ निकाय	५)
मज्झिम निकाय	६)
विनय-पिटक	६)
जातक-कथा (प्रथम भाग)	१)
धम्मपद	≡)
तिब्बत में सवा बरस	३॥)
बुद्ध-वचन	।=)
भगवान् हमारे गौतम बुद्ध	–)
उदान	१)
मिलिन्द-प्रश्न	३॥)
वादन्याय (संस्कृत)	३)
बुद्धचर्य्या	५)
अभिधर्मकोष: (संस्कृत)	५)
वार्तिकालङ्कार (संस्कृत)	३)
तिब्बत में बौद्ध-धर्म	१॥)
बुद्ध और उनके अनुचर	१)
भगवान् बुद्ध की जीवनी	१)
बुद्ध	–)

मिलने का पता—

महाबोधि पुस्तक-भण्डार,
सारनाथ, बनारस।

प्रकाशक—धम्मजोति, महाबोधि-सभा, सारनाथ, बनारस।
मुद्रक—धम्मजोति, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, बनारस-ब्रांच।

धर्म-दूत

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्स

विषय-सूची

गाँव या जङ्गल में सुख दुःख को पा, अपने और पराये का भेद
न करो। उपाधि के आधार पर ही स्पर्श लगते हैं।
उपाधि के मिट जाने से स्पर्श कैसे लगेंगे ?

—भगवान् बुद्ध

वर्ष ४ अंक ६ — आश्विन पूर्णिमा बु० सं० २४८२ / वि० सं० १९९५ — वार्षिक मूल्य ॥)

महाबोधि-विद्यालय निर्माण-भवन

(१)

हमें यह सूचित करते हुए विशेष प्रसन्नता होती है कि सारनाथ की पवित्र भूमि में भिन्न भिन्न प्रकार की संस्थाओं के लिए महाबोधि-विद्यालय के भवन-निर्माण का कार्य प्रारम्भ हो गया है। इस समय केवल सात कमरों के बनवाने का प्रबन्ध किया जा रहा है क्योंकि महाबोधि-सभा समस्त विद्यालय के व्यय-भार को सहन करने में असमर्थ है। कमरों के बड़े होने के कारण सात कमरों के बनवाने की लागत १५००० रु० है, परन्तु कार्य की महत्ता का विचार करते हुए संसार के बौद्ध-सज्जन इसे अधिक नहीं समझेंगे। विद्यालय साल भर में बनकर तैयार हो जायगा, अतः हम समस्त संसार से शीघ्रातिशीघ्र सहायता के प्रार्थी हैं। केवल एक कमरे के बनवाने में लगभग १८०० रु० लग जायेंगे। क्या दस बौद्ध महाशय एक एक कमरे के व्यय-भार को उठाने का साहस नहीं करेंगे? सारनाथ तीव्र-गति से उन्नति पथ की ओर अग्रसर हो रहा है और हमें निश्चय है कि बहुत से ऐसे बौद्ध-सज्जन हैं जो इस पवित्र भूमि के साथ अपने नाम को चिरस्थायी बनाने में अपना गौरव समझेंगे। कई शताब्दी के पश्चात् आज उनके लिए यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है। दानशील व्यक्तियों के नाम उनके व्यय-भार से निर्मित कमरे के सामने संगमरमर पर खोद दिये जायँगे।

महाबोधि-सभा के जेनरल सेक्रेटरी महोदय ने 'पीनांग-बुद्धिस्ट एसोसियेशन' के सदस्यों से हाल ही में इस विषय पर बातचीत की है और हमें आशा है कि 'एसोसियेशन' कुछ कमरों के बनवाने का व्यय अपने ऊपर लेगी। सब प्रकार के सहायतार्थ धन इस पते से भेजे जाने चाहिए:—

जेनरल सेक्रेटरी,
महाबोधि सोसाइटी,
सारनाथ, बनारस।

(२)

हमें यह सूचित करते हुए प्रसन्नता होती है कि नई दिल्ली में बौद्ध-मन्दिर निर्माण का कार्य आरम्भ हो गया है। अन्य निवास-स्थानों के सहित मन्दिर का समस्त व्यय लगभग २०००० रु० के होगा। सर्वदा से अपनी दानशीलता के लिए प्रसिद्ध श्रद्धेय जुगुल किशोरजी बिड़ला ने समस्त व्यय-भार अपने ऊपर लिया है और हम लोग उन्हें हृदय से धन्यवाद देते हैं। अन्य-विभागों में सहयोग देने के साथ ही साथ आपने अपने ऊपर इस महान् कार्य का भार लिया है; इसका कारण आपकी बौद्धों के प्रति विशेष सहानुभूति और प्रेम ही है। पाठकों को स्मरण होगा कि इस विहार की नींव जापान के **जेनरल कानसल मि० के मेनेजवा,** ने ३१ अक्टूबर सन् ३६ में डाली थी। कार्यों की जाँच करके जेनरल सेक्रेटरी अभी हाल ही में दिल्ली से वापस आये हैं। इस साल के अन्त तक विहार के पूर्ण होने की आशा है।

धर्म-दूत

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवलपरिपुन्नं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग (विनय पिटक)

"भिक्षुओ! सर्व साधारण के हित के लिये, लोगों को सुख पहुँचाने के लिये, उन पर दया करने के लिये तथा देवताओं और मनुष्यों का उपकार करने के लिये घूमो। भिक्षुओ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्थाओं में कल्याणकारक धर्म का, उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य्य का प्रकाश करो।"

सम्पादक—धम्मानन्द

वर्ष ४ } सारनाथ, अक्टूबर बु० सं० २४८२ / ई० सं० १९३८ { अंक ६

सत्यपथ पर

(लेखक—धम्मानन्द, लङ्का)

आज संसार में जितने धर्म और सिद्धान्त हैं, उन सबकी जननी विचार की विभिन्नता है; अतः विचार का महत्त्व उसकी विभिन्नता से प्रकट होता है। विचार का परिवर्तन विकास का लक्षण है।

लोगों की धारणा है कि 'भिन्नता' ही सामाजिक भेदभाव का कारण है। साधारण मनुष्यों की दृष्टि में तो यह विचार कुछ महत्त्व अवश्य रखता है, परन्तु विज्ञ पुरुष की दृष्टि में यह धारणा प्रायः निर्मूल सी है; क्योंकि भिन्नता विशेषता का कारण है और विशेषता प्रायः प्रत्येक समाज, सामग्री तथा सत्य परिस्थिति में सन्निहित है। भिन्नता का रहस्य विशेषता से प्रकट होता है; उसकी आवश्यकता मनुष्य स्वयं अनुभव करता है। Harmony is unity in diversity अर्थात् अनेकत्व में ही एकत्व का होना यथार्थ सौन्दर्य है। भिन्नता की परिधि में ही भिन्नता छिपी रहती है। यद्यपि मनुष्य स्वभावतः अपने आचरण, विचार एवं व्यवहार में विभिन्नता रखता है परन्तु इसके साथ ही साथ उसके पारस्परिक सम्बन्ध का क्रम भी जारी रहता है। उदाहरणार्थ, हम अपने नेताओं की ओर आपका ध्यान आकृष्ट कराना चाहते हैं। विचार में तो वे एक दूसरे से बहुत कुछ भिन्न हैं; पर व्यवहार में दोनों का उद्देश्य समान है।

बौद्ध-सिद्धान्त के अनुसार समस्त प्राणी मात्र चार श्रेणियों में विभक्त किये जा सकते हैं। "नानत्तकाया नानत्तसञ्ञी, नानत्तकाया एकत्तसञ्ञी, एकत्तकाया नानत्तसञ्ञी, एकत्तकायाएकत्तसञ्ञी।" देवयोनि, मनुष्य-योनि, तथा विनिपातिक—प्रेतयोनि में जन्म लेनेवाले प्राणी नाना प्रकार के हैं। वे (शरीर) स्वरूप तथा मानसिक प्रवृत्ति, दोनों में ही विभिन्निता रखते हैं। उसके फलस्वरूप, एक ही विषय पर लोगों की अनेक धारणायें होती हैं।

नरक, प्रेतयोनि, तिर्यक-योनि तथा असुर-योनि में जन्म लेनेवाले स्वरूप में भिन्न होते हुए भी मानसिक-प्रवृत्ति में भिन्न नहीं हैं। 'परित्ताभ', 'अप्रमाण', 'आभास्वर', ब्रह्म लोकों में रहनेवाले ब्रह्मगण, रूप में एक समान होते हुए भी मानसिक-प्रवृत्ति में भिन्न हैं। 'परित्तसुभ' अप्पमाणसुत्त' सुभकीर्ण 'वेहप्फल' ब्रह्म लोकों में रहनेवाले ब्रह्मगण शरीर और मन दोनों में सर्वथा एक हैं। उनकी शारीरिक परिस्थिति तथा मानसिक-प्रवृत्ति परस्पर समान हैं, उनमें किसी प्रकार का भेदभाव नहीं है। इन चारों श्रेणियों में से मनुष्य पहली श्रेणी में गिनाया गया है जो स्वभावतः तन मन से अर्थात् बाह्य अभ्यन्तर दोनों प्रकार से भिन्न है। पर, इसमें एक रहस्य है। जहाँ भेद-भाव है, समानता भी वहीं है।

नाना प्रकार की विचार-धाराओं के सम्पर्क से मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति होती है; तथा भिन्न-भिन्न समाजों का परिचय प्राप्त करने से वह अपनी सामाजिक उन्नति का मार्ग परिष्कृत बना लेता है।

किसी वस्तु को समझ लेने के लिए सामग्री की आवश्यकता होती है।

किसी एक भाषा का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए दूसरी भाषा का अध्ययन अनिवार्य है।

किसी एक शास्त्र में पारङ्गत होने के लिए दूसरे शास्त्रों का भी परिचय करना पड़ता है। ठीक उसी प्रकार, किसी धर्म को सिद्धान्त को अथवा मजहब को पहचानने के लिए अन्यमतों का भी ज्ञान संचय करना आवश्यक है।

"केरस" ने कहा है कि "यदि आप अपने धर्म को जानना चाहते हैं तो आपको दूसरे धर्मों का भी परिचय करना अनिवार्य है।" प्रायः बहुत से लोग अपने धर्म को सर्वोत्कृष्ट तथा दूसरों के धर्म को निकृष्ट कहकर उस पर आक्षेप करते हैं। यदि वे केवल अपने ही धर्म को सर्वश्रेष्ठ समझें तो इसमें कोई आपत्ति नहीं; क्योंकि यह तो उनकी प्रगाढ़ भक्ति का लक्षण है। परन्तु, दूसरों का धर्म सर्वथा असार समझना भ्रमपूर्ण है। प्रत्येक धर्म में कुछ न कुछ विशेषता अवश्य रहती है।

"एकं सत् विप्राः बहुधा वदन्ति"

विद्वान् लोग एक ही सत्य का अनेक विधि से प्रकाशन करते हैं। इसके फलस्वरूप अनेक धर्म और सिद्धान्तों का प्रादुर्भाव होता है जिनका एक मात्र सन्देश है "सब्ब पापस्स अकरणं, कुसलस्स उपसम्पदा सचित्तपरियोदपनं, एतं बुद्धानुशासनं" सब प्रकार के अशुभ कर्मों से विरक्त होकर कुशल कर्मों को करना और अपने चित्त का दमन करना ही बुद्धानुशासन है।

मनुष्य स्वभावतः एक ही वस्तु को अनेक दृष्टि से देखता है; एक ही तत्त्व को अनेक प्रकार से समझ लेता है, तथा एक ही विषय द्वारा अनेक निर्णय पर पहुँचता है।

परन्तु, इसके विपरीत 'संयमी' अर्थात् महात्मा समस्त प्राणी मात्र को एक ही दृष्टि से देखते हैं; अनेक सिद्धान्तों से एक ही निर्णय पर पहुँचते हैं। अनेकत्व में एकत्व को ढूँढ़ते हैं, समुच्चयवस्तु मात्र में एक ही सत्य को देखते हैं। "एकं हि सच्चं न दुतियमत्थि, यस्मिं पज्जानो विवदे पजानं" सत्य एक ही है, दो नहीं जिसके वास्तविकरूप को जानकर, विद्वान् वादविवाद नहीं करते।

असल में हम सत्य के अन्वेषक हैं; सत्य के पुजारी हैं, सत्य-पथ के पथिक हैं।

वास्तव में, संसार में कुछ भी असत्य नहीं है। एक मात्र सत्य ही सर्वत्र व्यापक है। असत्य से अपने ही ज्ञान की ऊनता समझनी चाहिए।

हम में जो कुछ ज्ञान है, गुण है, धारणा है, और विश्वास है, वही वास्तव में हमारा धर्म है; वही सत्य की झलक है, और वही हमारी तुला है, वही हमारा सर्वस्व है। हमारी बुराई या भलाई उसी पर निर्भर है; हमारा उत्थान या पतन उसी से विदित होता है।

मनुष्य के गुण, ज्ञान, विश्वास, तथा उसके धर्म में भी अन्य वस्तुओं की तरह परिवर्तन होते रहते हैं। यदि हम समझें कि हमारे विचार का यानी ज्ञान का परिवर्तन नहीं हो सकता तो यह नितान्त भूल है "परिवर्त्तन ही यदि उन्नति है तो हम बढ़ते जाते हैं।" अतएव, आज हम जिस बात को स्वीकार करेंगे, सम्भव है कल ही उसे अस्वीकार करें; यह हमारे स्वातन्त्र्य पर निर्भर है। किसी वस्तु की स्वीकृति तथा अस्वीकृति दोनों के लिए ही हमारी प्रगति स्वतन्त्र है।

'पोलकेरस' के कथनानुसार सत्यान्वेषण के पाँच अङ्ग होते हैं:—

"First, to inquire after truth. Second, to accept the truth. Third, to reject what is untrue. Fourth, to trust in truth. And, fifth, to live the truth"

"Religion of Science".

अर्थात् पहला अङ्ग सत्य को ढूँढ़ना, दूसरा सत्य को स्वीकार करना, तीसरा असत्य को छोड़ना, चौथा सत्य पर विश्वास करना, तथा पाँचवाँ सत्य पर आचरण करना है। इससे यह स्पष्ट होता है कि "सत्यान्वेषण" दो लक्षणों द्वारा समुलक्षित है "ग्रहण", और त्याग। तात्पर्य, यह कि "सत्यगवेषी" के दो कर्तव्य हैं। त्याज्य का त्याग करना, और ग्राह्य को ग्रहण करना। अभिञ्ञेय्यं, अभिञ्ञातं भावेतब्बं च भावितं, पहातब्बं पहीणम्मे, तस्मा बुद्धोस्मि ब्राह्मण" ब्राह्मण, मैंने जानने लायक सबको जान लिया, प्राप्त करने लायक सबकी प्राप्ति कर ली, त्याग करने लायक सबका त्याग किया। इसलिए मैं बुद्ध हूँ। अस्तु !!

खरगोश की कहानी

(अनुवादक—भिक्षु धम्मरतन)

(क्रमशः)

अनुरुद्ध बोले—मैंने सुना है कि :—

एक समय बोधिसत्त्व खरगोश के रूप में एक रम्य मैदान में वास करते थे। वहाँ खरगोशों की संख्या इतनी बढ़ गई थी कि लोगों को बहुत अधिक विपत्तियों का सामना करना पड़ा।

उस विकट स्थिति को देखकर बोधिसत्त्व के मन में यह विचार उठा "दुर्दिन आ गये हैं। लोग भोजन के अभाव के कारण बहुत दुःख भोगते हैं। वे लोग क्रोधावेष में आकर जानवरों की हत्या करेंगे, और मुझे भी उस दशा को प्राप्त होना पड़ेगा। क्या मैं इस व्यर्थ जीवन से कोई लाभ उठा सकूँगा ? मैं तो ठहरा एक निर्बल प्राणी; तिस पर भी, यदि मैंने सम्बोधि की पूर्ति के प्रति कुछ भी किया तो वह बहुत है; निर्वाण की प्राप्ति से ही दुःख का अन्त हो सकता है। अतः मैं निर्वाण का गवेषक बनूँगा, संसार में कल्याणकारी कार्यों के ही द्वारा विजय है; सत्य ही शक्ति है। बुद्धत्व को प्राप्त करना है। जो अपने प्रयत्न तथा पराक्रम से उसका प्रतिलाभ करेंगे, वे स्वयं दूसरों के लिये आदर्श बनेंगे। बोधि-चित्त दया और करुणा से परिपूर्ण है; बुद्ध सर्व प्राणियों के प्रति समान प्रेम रखते हैं। मैं भी उनका अनुसरण कर, एक दिन उस उच्चतम पद की प्राप्ति करूँगा। सत्य एक ही है; मुझे चाहिए कि अपने जीवन के प्रत्येक क्षण को उसकी प्राप्ति में लगाऊँ।"

इस प्रकार विचार कर बोधि-सत्त्व ने अपने भाइयों को भावी दुर्घटना से सचेत कर, अनित्यता का बोध कराते हुए अल्पेच्छ जीवन व्यतीत करने का उपदेश देना निश्चय कर लिया।

बोधिसत्त्व भाइयों के पास जाकर समझाने लगे। लेकिन, सभों ने उनकी बात अन-सुनी कर दी। उन जानवरों ने कहा—"आप यहाँ से कृपा कर चले जायँ और अपने को सत्य तथा धर्म के लिए निछावर कर दें। आप दूसरों को कष्ट न दें। आप अच्छे कर्म करके उच्च श्रेणी में जन्म ले सकते हैं। हम जीवित रहना चाहते हैं और उस काल्पनिक सुख की आशा न करके केवल इसी जीवन में प्राप्त-सुख से प्रसन्न हैं। यहाँ इन हरे भरे खेतों में हमारे लिए अनेक प्रकार के अन्न उपलब्ध हैं। आप हमारे लिये कष्ट के भागी न बनें। हर एक अपना अपना ख्याल करे।"

उस समय, मुक्ति-गवेषी एक ब्राह्मण जङ्गल में जाकर ध्यान लगा रहा था। वह क्षुधा तथा शीत से बहुत पीड़ित था। एक दिन घन-घोर वर्षा के बाद उसने तापने के लिये कुछ आग जलाई। उसमें अपने हाथों को तपाते हुए उसने करुणार्द्र स्वर में कहा—'भूख मुझे बहुत सता रही है। मालूम होता है कि अपनी अभिलाषा की पूर्ति के पहले ही मुझे इस संसार से बिदा हो जाना पड़ेगा।'

बोधिसत्त्व ने ब्राह्मण को इस दशा में देखकर विचार किया 'इन्हें अकाल-मृत्यु से बचाना चाहिए। ये मोह-रूपी अन्धकार में भटकनेवालों के लिए एक प्रदीप हैं। मैं

उनका भोजन बन जाऊँगा।' बोधिसत्त्व अग्नि में कूद पड़े। ब्राह्मण की क्षुधा शान्त हो गई।

कुछ दिन बाद, उस प्रदेश के लोगों ने दुर्भिक्ष-भय से मृगों को अपना शिकार बनाना आरम्भ कर दिया। एक घेरा डालकर, कुछ ही दिनों में सभी खरगोशों को साफ कर दिया।

शशक की कथा को समाप्त करते हुए भिक्षुवर ने कहा—"यथार्थ में जीवन का अर्थ है मृत्यु; जीवधारियों में कोई भी काल के गाल से नहीं बच सकता। सभी "संस्कार" अनित्य हैं। कोई भी इस स्वाभाविक नियम से नहीं बच सकता। सत्कर्म ही अमर है। यही अभिधर्म का सार है। जो मृत्यु के आश्रित बातों को उसी के लिए छोड़ देता है, वही निर्वाण को प्राप्त होता है।"

युवक ने पूछा—"निर्वाण क्या है?"

अनुरुद्ध ने भगवान् के शब्दों में कहा—"**कामाग्नि को बुझाना ही निर्वाण है।**"

"**द्वेष तथा मोह-अग्नि का अन्त करना निर्वाण है।**"

"**संक्षेप में—तृष्णा का दमन ही निर्वाण है।**"

युवक के मुख से इस नये सिद्धान्त को सुनते ही उसको असन्तोष होने लगा। लेकिन, भिक्षुवर ने अपने उपदेश का क्रम स्थिर रखते हुए कहा—"आत्म-दृष्टि" के भ्रम में पड़े हुए लोगों को निर्वाण का अनुभव तो दूर रहा, प्रत्युत् उसका समझना भी अत्यन्त दुष्कर है। सब संस्कार व्ययशील हैं। उत्पन्न होनेवाली सभी वस्तुयें भग्नशील हैं। कोई वस्तु एक क्षण के लिये भी स्थिर नहीं; इसलिए स्कन्ध-पुञ्ज रूपी इस शरीर में भी कोई वस्तु स्थिर नहीं। प्रत्येक वस्तु-स्थिति का अपना "उपादान-प्रत्यय" है। हर एक वस्तु-स्थिति का, उसके निजी विकास का, इतिहास है। सब संस्कार चलायमान हैं; धारावाही हैं। इस अनित्य संसार में कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो कि सदा के लिए क्या, एक क्षण भर भी, स्थिर रहती हो। कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो कि अपरिवर्तनशील तथा स्थिर हो।

संस्कारों के परे केवल सत्य है, केवल निर्वाण है, केवल अमरत्व है। लेकिन, यह असांस्कारिक तथा अलौकिक है। वह यथार्थ में क्या है? वह है अजर, अमर बोधि; वह है उन सब धर्मों का एकांगीकरण जो कि नित्य तथा असांस्कारिक हैं। जिस पद के विषय में सम्यक् ज्ञानी विवाद करते हैं, वह यथार्थ में कोई पदार्थ वा व्यक्ति-विशेष नहीं है; कोई आत्मा वा परमात्मा नहीं है। यदि हम नास्तिकता से किसी सांस्कारिकता अथवा किसी वस्तु-स्थिति का अभाव समझते हैं, तो यदि किसी दूसरे शब्द के अभाव के कारण हम उसे नास्तिकता ही कहें तो अनुचित न होगा। लेकिन इस नास्तिकता का, इस अभाव का अर्थ उच्छेद नहीं है। यदि अमरत्व तथा असंस्कारिकत्व सम्भव न हों तो जन्म-मृत्यु के चक्कर से छुटकारा भी सम्भव नहीं। यदि बोधि का अभाव हो तो बुद्धत्व भी सम्भव नहीं है। उसके अभाव में बुद्ध का प्रादुर्भाव तथा मुक्ति-मार्ग की गवेषणा भी सम्भव नहीं है। लेकिन, बुद्ध का प्रादुर्भाव हुआ है। उन्होंने आत्मवाद का खण्डन कर, दुःख का हेतु इसी भ्रम को बताया है। उन्होंने निर्वाण-पथ अर्थात्—आर्य-अष्टांगिक-मार्ग को दिखलाकर प्राणि मात्र को कृतार्थ बनाया है।

सुदत्त ने कहा—"भन्ते, आपके परम गुरु शाक्यमुनि, जिनसे आपने यह शिक्षा ली है, बड़े महापुरुष जान पड़ते हैं। लेकिन इस कुकुरघड़ में उनका सम्मान नहीं है, क्योंकि यहाँ सब के सब कट्टर ब्राह्मण हैं और बौद्ध एक भी नहीं। लेकिन, हाँ मैं आपसे यह नहीं छिपाऊँगा कि वहाँ भगवान् का गुणानुवाद करनेवाला एक सज्जन है। वह है राजा बिम्बिसार का मित्र महासुभूति, जो कि उसी ग्राम का मुखिया तथा न्यायकर्ता है। यदि आप वहाँ जायँगे तो उसके यहाँ भी कृपा करें और वह आपका स्वागत करेगा। वह भगवान् का अनुयायी तो नहीं है; लेकिन, वह उनके प्रति बहुत श्रद्धा रखता है। वह राजमहल में भगवान् से मिल चुका है और उनके विषय में उसकी यह धारणा है "स्वयं ब्रह्मा भी प्रतिभा तथा कान्ति में शाक्यमुनि से टक्कर नहीं ले सकता।" आप राजा के पुत्र सुदत्त का अर्थात् मेरा नाम भी उसे स्मरण कराएँ, जिससे कि कल होनेवाले उनकी पुत्री के विवाह के अवसर पर वे आपको भी निमन्त्रित कर सकें। तब आप कृपा कर सुभूति के यहाँ पधारें। मैं भी आपसे वहाँ मिलूँगा क्योंकि उनकी कन्या का वर मैं ही हूँ।"

दशरथ जातक

(लेखक—भिक्षु बुद्धप्रिय)

"जातक" नामक बौद्ध-ग्रन्थ में एक कहानी आती है जो रामायण की राम-कहानी से बहुत कुछ मिलती है। आज मैं उसको 'धर्मदूत' के पाठकों के लिये यहाँ उद्धृत करता हूँ।

पूर्वकाल में, बनारस में एक राजा धर्मानुकूल राज्य करते थे। उनका नाम था 'दशरथ'। उनकी बड़ी रानी ने राम और लक्ष्मण नाम के दो पुत्र तथा सीता नामक एक पुत्री को जन्म दिया।

उस रानी के देहान्त हो जाने के बाद राजा ने दूसरा ब्याह कर लिया। उस दूसरी रानी से भरत नामक एक कुमार की उत्पत्ति हुई। राजा इस रानी को बहुत चाहते थे, इसलिये एक दिन उन्होंने उससे कहा कि, "मैं तुमको एक वर देना चाहता हूँ जो चाहे माँग लो।" रानी ने भी मौका पाकर, राजा के कहे अनुसार, एक दिन यह वर माँगा कि 'आपके बाद मेरे पुत्र भरत को राज-पाट मिले' इस बात पर क्रुद्ध होकर राजा ने धमकाया कि "हे चाण्डालिन्! तू मेरे सुयोग्य सर्व-गुण-सम्पन्न पुत्रों के रहते हुए भी अपने पुत्र को राज-पाट दिलवाना चाहती है ? यह असम्भव है।" रानी डर गई और अपने महल में चली गई। दूसरे दिन भी वह उसी तरह वर माँगने आई। राजा को दृढ़ विश्वास हो गया कि रानी बिना वर लिये नहीं छोड़ेगी। मुझे उसे वर देना ही पड़ेगा। मगर, मुझे इस बात का डर है कि इस वर को देने से मेरे अन्य पुत्रों पर कहीं कोई आफत न आ जाय ! स्त्रियाँ तो अविश्वास के योग्य हैं। यह चेतावनी देती है कि मुझे अपने बड़े पुत्रों की रक्षा के लिये कुछ न कुछ प्रबन्ध करना आवश्यक

है। इस तरह विचार कर राजा अपने बड़े पुत्रों को सम्बोधित कर बोले—"पुत्रगण ! मुझे इस बात का दुःख है कि तुम लोगों के जीवन पर विपत्ति का बादल मँडरा रहा है; इसलिए तुम दोनों अपने जीवन-रक्षणार्थ कहीं बाहर चले जाओ। मेरी मृत्यु के बाद अर्थात् बारह वर्ष के बाद आकर अपने पैतृक-राज्य को लेकर अच्छी तरह उसका उपभोग करना।"

दोनों कुमार राजा के आज्ञानुसार विदा ले राजधानी से बाहर जंगल में जाने लगे। उस समय, सीतादेवी भी उन दोनों के साथ हो लीं। तीनों जने पहाड़ों तथा जंगलों से होते हुए हिमालय वन में पहुँचे। वहाँ, एक पर्णकुटी बनवाकर फल मूलों के सहारे जीवन व्यतीत करने लगे। एक दिन लक्ष्मण ने राम से कहा "अग्रज ! आप हमारे पिता के समान हैं, इसलिये आप इसी कुटी में रहें, भगिनी और मैं फलों के लिये वन में जाया करूँगा और फल मूल लाकर आपको खिलाऊँगा।" तीनों इस तरह बहुत सुख-पूर्वक रहने लगे।

उनके राजधानी से विदा हो जाने के बाद राजा का पुत्र-शोक बढ़ने लगा। उसके सहन न कर सकने के कारण, नवें साल राजा दशरथ का स्वर्गवास हो गया।

रानी अपने पुत्र भरत को सिंहासनारूढ़ करने की तैयारियाँ करने लगी; पर मन्त्रियों ने उसे वैसा करने से रोका। भरत को भी यह बात जँच गई और वह स्वयं अपनी मन्त्रि-मण्डली के साथ भाई राम को लिवा लाने के लिये सन्नद्ध हो गये। उन्होंने जहाँ राम की कुटी थी वहीं पहुँचकर कुटी से कुछ दूर मण्डली को ठहराया और दो तीन मन्त्रियों के साथ राम से मिलने के लिये पर्णकुटी के पास पहुँचे। उस समय लक्ष्मण और सीता दोनों फल-मूल एकत्रित करने के लिये वन में गये थे। भरत अग्रज से यह संवाद सुनाकर, कि पिता की मृत्यु हो गई है, पैर पर गिरकर मन्त्रियों के साथ रोने लगे। राम को यह सुनकर कुछ दुःख न हुआ। लक्ष्मण और सीता भी कुछ देर बाद कन्द-मूल लिये वापस आये। राम सोचने लगे कि "सीता और लक्ष्मण दोनों अभी छोटे हैं, यदि यह बात उनके कानों में पहुँच जायगी तो वे दोनों अवश्य ही उस संवाद को सहन न कर सकेंगे; और उसी दुःख के कारण उनकी मृत्यु हो जाने की भी सम्भावना है। राम ने इस तरह अपने मन में विचार कर दोनों को सामने बुलाया और कहा "भाई और बहन ! तुम दोनों आज बहुत जल्दी वापस चले आये, इसलिये दोनों दण्ड के पात्र हो। जाकर, उस तालाब के पानी में सिर को उठाये खड़े हो जाओ।" आज्ञा पाते ही वे दोनों जाकर पानी में खड़े हो गये। खड़े हो जाने पर राम ने उनसे कहा "भाई लक्ष्मण तथा देवी सीता ! आज भरत मन्त्रियों के साथ हम लोगों से यह कहने आये हैं कि हमारे पिता दशरथ का स्वर्गवास हो गया है।" यह सुनकर दोनों बेहोश हो गये; कुछ काल के बाद होश में आये।

जब भरत ने देखा कि राम को छोड़ सभी लोग उनके पिता की मृत्यु के संवाद को सुनकर रो रहे हैं, तब उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। उस बात को जानने के अभिप्राय से वे अपने अग्रज से पूछने लगे—"हे आर्य ! यह आपकी कैसी विचित्रता है ? आपकी इस बात को देखकर मैं सहम उठा। आप अपने पूज्य पिताजी की मृत्यु को सुनकर रोना तो कोसों दूर, अल्पमात्र शोक भी नहीं प्रकट करते ? आप मुझे बता दें कि आप किस कारण नहीं रोते हैं ? क्या यह आपका कोई अमानुषिक गुण तो नहीं है ?"

हे अनुज ! सुनो; अपने न रोने का कारण बतलाता हूँ।

"तुम जानते हो कि यह संसार अनित्य है, अस्थिर है, कोई भी चीज़ बहुत दिनों तक एक ही प्रकार नहीं रहती, हमेशा बदलती रहती है; चाहे वह कितनी ही मूल्यवान् वस्तु क्यों न हो। इस बात को जानते हुए मैं शोक नहीं करता।

"हे अनुज ! मृत्यु किसी के प्रति यह भेद-भाव नहीं रखती कि वह सोने के समान सुन्दर है अथवा कुलवान् है, शक्तिशाली पुरुष है, विद्वान् है, धर्मात्मा है, चक्रवर्ती राजा है, या अन्नपान से विहीन गरीब भिखारी है। वह सबको समान रूप से अपने वश में कर लेती है।

"जिस प्रकार पका हुआ फल अपने डंठल में नहीं रहता, उससे गिरने का भय बना रहता है; उसी प्रकार यह मानव जीवन भी मृत्यु के अधीन है।

"जो आदमी प्रातःकाल बिना किसी प्रकार की शिकायत के अपने कामकाज में तत्पर रहता है, वह अकस्मात् सन्ध्या के समय विलीन हो जाता है; जो आदमी सन्ध्या-समय दिखाई देता है वह प्रातःकाल देखने में नहीं आता; अर्थात् मृत्यु के लिये कोई समय नियमित नहीं है।

"जो आदमी अपने पिता या भाई के मर जाने पर रोता पीटता है, वह बेहोशी में पड़ जाता है, बेहोश हो जाने के कारण वह अपने सब कामों से निरस्त हो जाता है। उसका रोना निरर्थक है, क्योंकि उसके रोने से उस मरे हुए के प्राण नहीं लौट आते।

"जो आदमी रोता है उसका शरीर कृश होता है, रूप कुरूप बन जाता है। उसके रोने से शरीर तथा चित्त दोनों सन्तप्त हो जाते हैं।

"जिस प्रकार विद्वान् लोग अपने घर में आग लगने पर उसको बुझाने के लिये हजारों घड़े पानी फेंकते हैं, उसी प्रकार पण्डित भी अपने दुःख या शोक का दमन करते हैं। जैसे हवा में फेंकी गई रुई बिना रोके उड़ जाती है, वैसे ही विज्ञ लोग अपने शोक को भी हवा के साथ बहा देते हैं।

"जो आदमी जन्म लेता है वह अकेला ही आता है और अकेला ही मर जाता है। जितने दिन वह संसार में रहता है उस थोड़े समय के लिये वह, माता, पिता, भाई, बहन, आदि से अपना सम्बन्ध स्थिर कर लेता है। परन्तु, सब का कर्म और फल अलग-अलग है, उसी के अनुसार उसके जन्म तथा मरण दोनों होते हैं।

"इस तरह, जो आदमी सोचता रहता है उसे इहलोक तथा परलोक के बारे में कोई चिन्ता नहीं रहती। उसने प्रकृति को अच्छी तरह समझ लिया है, वह कभी शोक नहीं करेगा; और शोक से अपने चित्त तथा शरीर को नहीं तपायेगा।

"हे अनुज भरत ! विद्वान् इन सबको जानकर कभी शोक नहीं करते। मैं भी अपने पिता की राजगद्दी पर बैठकर ग़रीबों को दान दूँगा, यशस्वी को यश का पात्र बनाऊँगा; जैसे पिताजी राज्य करते थे, उसी तरह मैं भी अपने बन्धुओं की रक्षा करूँगा, उन्हें खिलाऊँगा, धर्म के रक्षक श्रमण तथा ब्राह्मणों की इच्छाओं को पूरा करूँगा।

"इन सबको जानते हुए मैंने शोक प्रकट नहीं किया।"

उनकी संसार की निस्सारता पर दिये गये भाषण को सुनकर भरत के दुःख-शोक मिट गये।

अन्त में, भरत ने अपने अग्रज से आग्रह किया कि आप बनारस जाकर अपने पिता की राजगद्दी पर राज्य करें।

"हे भरत! तुम अपने भाई लक्ष्मण और बहिन सीता को साथ ले जाकर राज-पाट करो।" भरत इस प्रस्ताव को टालकर कहने लगे—"आर्य! आप ही राज्य करें।" राम ने कहा—"भरत! पिता ने मुझसे बारह वर्ष के बाद आकर शासन करने के लिये कहा था, यदि मैं अभी जाऊँ तो आज्ञा-उल्लंघन का दोष मेरे ऊपर आ जायगा। इसलिये वनवास-समय पूरा हो जाने के, अर्थात् तीन वर्षों के बाद आऊँगा और राजगद्दी पर बैठकर राज्य करूँगा।"

भरत ने पूछा—"अच्छा, तो इन तीन वर्षों तक कौन राज्य करेगा?" राम ने कहा—"तुम लोग करो।" भरत—"नहीं, हम लोग नहीं करेंगे।" राम—"जब तक मैं नहीं आऊँ, तब तक मेरी ये चरणपादुका राज्य करेंगी।"

तब भरत, अपने अग्रज से विदा होकर, भाई लक्ष्मण और बहिन सीता को लिये अपनी मण्डली के साथ बनारस लौटे और आर्य राम की चरणपादुका को सिंहासन पर रखकर राज्य करने लगे।

जब कभी न्याय करना होता था तो पहले उस पादुका को सिंहासनारूढ़ कर देते थे; यदि फ़ैसला ग़लत निकलता तो वे आपस में टकराने लगती थीं; नहीं तो स्थिर रहती थीं।

तीन वर्षों के बाद, रामजी वन से निकलकर बनारस आये, और पिता के राज्योद्यान में जाकर, एक पेड़ के नीचे बैठ गये। जब मन्त्रियों ने उनको देखा, तो सब लोगों ने मिलकर सीता को पटरानी बना उनका अभिषेक किया।

राम जो अपनी महिषी सीता के साथ सोलह वर्ष तक धर्म-पूर्वक राज्य करके स्वर्ग सिधारे।

(आपने 'जातक' का नाम सुना होगा। यह उस पुस्तक का नाम है जिसमें भगवान् बुद्ध के बुद्धत्व के पहले बोधिसत्व के समय लिये गये जन्मों का वर्णन है। वह पाली त्रिपिटिक के सूत्र पिटक के अन्तर्गत पुस्तकों में से एक है। इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद भदन्त आनन्द कौसल्यायन कर रहे हैं। उसका प्रथम भाग छप गया। मूल्य सिर्फ १) है। प्राप्तिस्थान—महाबोधि-पुस्तक-भण्डार, सारनाथ, बनारस—सम्पादक)

सम्पादकीय वक्तव्य

अंगुलिमाल

संसार में कोई पापी नहीं, कोई दुरात्मा नहीं, कोई अभागा नहीं। पापी, दुरात्मा या अभागा उन्हें कह सकते हैं जो बुरे काम करते हैं। परन्तु बुरे कर्म करनेवाला सदैव दुर्भाग्य का ही पात्र बना नहीं रहता। बुरे कर्म के फलस्वरूप मनुष्य दुःखी हो सकता है।

परन्तु, इसका तात्पर्य यह नहीं कि वह सदा के लिए दुख का ही भागी बना रहे। अशुभ कर्म करके मनुष्य दुखी होता है; और दुःख की प्रेरणा से वह अपने के सम्हाल पुण्यात्मा बनता है। प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवन की परिधि में दुःख का भी कुछ अनुभव होता ही है। दुख और सुख दोनों से जीवन बनता है। भगवान् बुद्ध ने दुख को ही संसार का वर्तमान सत्य माना है, जो चतुरार्य सत्य का प्रथमार्य सत्य है।

दुखी ही सुखी बनता है। पापी ही पुण्यात्मा बनता है। अवनति ही उन्नति का कारण होती है।

उदाहरणार्थ "अंगुलिमाल" को लीजिए। कुलीन ब्राह्मण वंश में उत्पन्न अंगुलिमाल अपने तान्त्रिक गुरु की आज्ञानुसार, तान्त्रिक मन्त्र की सिद्धि के लिए, एक सहस्र उँगलियों की माला बनाने के लिए डाकू हो गया और उसने श्रावस्ती में हाहाकार मचा दिया। उसकी पाप-लिप्सा यहाँ तक बढ़ गई कि अन्त में उसने अपनी वृद्धा माता को भी मारने का निश्चय कर लिया। ऐसी विकट स्थिति में भगवान् गौतम ने अपने विमल उपदेशों द्वारा उसके ज्ञान-चक्षु को खोलकर उसे एक संत रूप में परिणत कर दिया; फलतः अंगुलिमाल ने अर्हत पद की प्राप्ति की।

हाल ही में बा० उमाशंकर लाल बी० ए०, साहित्यरत्न, ने इस कहानी को एक पद्य-बद्ध पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किया है। इसमें अंगुलिमाल के अत्याचारों का जीता जागता चित्र है। साथ ही भगवान् बुद्ध को आश्चर्यपूर्ण कृति का अत्यन्त ही सुन्दर विश्लेषण है। मूल्य केवल एक आना है।

"नैनीताल आन्दोलन" पर आपत्ति

जून मास के धर्म-दूत में जो 'मंगोलियन' जाति को आर्य संस्कृति से सम्बन्धित कहा गया था उस पर एक श्रद्धेय सज्जन ने आपत्ति की थी। उनके इस पवित्र विचार, भावना का सहर्ष स्वागत करते हुए भी मुझे यह कहे बिना नहीं रहा जाता कि भगवान् बुद्ध के आविर्भाव के समय प्रचलित धार्मिक क्षेत्र अत्यन्त दूषित हो चला था। भगवान् ने अपनी अलौकिक ज्ञान-ज्योति से इन त्रुटियों तथा दोषों को शून्य करके प्राणी मात्र की मुक्ति वा निर्वाण प्राप्ति के साधन को ढूँढ़ने का बीड़ा उठाया। आप उसमें पूर्णरूपेण सफलीभूत भी हुए। उन्होंने अपने उत्कट अदम्य प्रयत्न से प्राचीन पवित्र आर्य संस्कृति का पुनरुद्धार कर उसे परिष्कृत रूप दिया। उन्हीं के प्रकाश-प्रदान से सारे चीन, जापान, लंका, ब्रह्मा तथा मंगोलिया आदि को बौद्ध-क्षेत्र में पदार्पण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। ऐसी दशा में यदि हम उन्हें आर्य संस्कृति से अन्य समझ लें तो हमारे लिए सम्भवतः यह उचित न होगा।

विद्यापीठ काशी के प्रसिद्ध इतिहास-प्रेमी श्री जयचन्द्र, विद्यालङ्कार जी ने सिद्ध किया है कि चीनी भाषा की उत्पत्ति आर्य भाषा से हुई है; वह 'हिन्दी-भाषा' से सम्बन्धित है। यह मत हमारे पक्ष को और भी पुष्ट करता है।

——

समाचार

सारनाथ के आगामी शुभ अवसर पर

हर्ष है !! वह दिन क्रमशः निकट आता जा रहा है; वह घटना पुनः घटनेवाली है; समस्त देशवासियों का वह सम्मेलन पुनः होनेवाला है ! वह शुभ अवसर, जब कि संसार के चारों ओर से प्रतिनिधि सारनाथ में एकत्रित होते हैं—अभी अभी आगे आ रहा है !!

भाइयो !! उस अवसर को कहीं खो न दें। अनेक जातीय, अनेक भाषाभाषी तथा अनेक बन्धुओं के दर्शन का एकमात्र स्वर्णसंयोग !

वार्षिकोत्सव

मूलगन्ध कुटीविहार का सातवाँ वार्षिकोत्सव ६, ७ और ८ नवम्बर को होगा। भगवान् बुद्ध की स्मृति में (जुलूस) "धातुप्रदर्शन" इसी समय पर गत वर्ष की तरह किया जायगा। पिछले वर्षों की अपेक्षा इस वर्ष अधिक दर्शकों के आने की आशा की जा रही है। वार्षिकोत्सव में सहयोग देनेवाले सज्जनों से अनुरोध है कि वे महाबोधि सभा को पहले से ही सूचना दे दें, जिससे कि उनकी सुविधाओं का पहले ही प्रबन्ध कर दिया जाय। हमें आशा है कि समस्त देशों से बौद्ध सज्जन इस अवसर पर आने की कृपा करेंगे।

× × × × ×

ईस्ट इंडिया कम्पनी ने जाड़े के मौसम के लिए लङ्कावालों को भारतवर्ष के पवित्र स्थानों के लिये रियायती टिकट देने का निश्चय कर दिया है। यह टिकट दस या उससे अधिक मनुष्यों को ही मिल सकता है। ब्रह्मा तथा अन्य देशों को भी ऐसा ही टिकट दिलवाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

बौद्धों के एक महान् नेता तथा राजनीतिज्ञ का कथन है कि ५००००० बौद्ध-भिक्षु घायल मनुष्यों का निरीक्षण तथा मृत-शवों का दफन करने में तल्लीन हैं। भिक्षुणियाँ स्वयंसेविका का काम करती हैं। चीनी तथा बौद्ध-भिक्षु प्रार्थना के साथ साथ दोनों सेनाओं के सामने मृत चीनी तथा जापानियों को दफन करते हैं। हांको में Mr Chu स्वयं १०० भिक्षुओं का नेतृत्व करते हैं जो २०००० भिक्षु घायलों का निरीक्षण करते हैं। वहाँ बौद्ध भिक्षुओं तथा घायलों के अतिरिक्त और कोई भी राष्ट्रीय व्यक्ति सहायतार्थ नहीं है। Mr Chu के कथनानुसार, बौद्धों ने वहाँ दस चिकित्सालयों की स्थापना भी की है।

"द्विजराज"

प्रयाग से निकलनेवाली मासिक पत्रिका है। सम्पादक, डा० इन्द्रदेव प्रसाद चतुर्वेदी, वार्षिक मूल्य २) "वर्णाश्रम" को पुष्ट करनेवाले लेखों से सुसज्जित है। ब्राह्मणों के लिए विशेष उपयुक्त है।

भूल-सुधार

(क) गत जुलाई अंक, पृष्ठ १८, पंक्ति ६:—७ और १६ के बीच पूर्णविराम चाहिए।

(ख) ,, ,, पृष्ठ १६:—'सुदर्शन लोक' के स्थान पर 'सुदर्शनि लोक' होना चाहिए।

रजिस्ट्री की संख्या ए २७६२

सूचना

हिन्दी-प्रेमियों को यह सुनकर प्रसन्नता होगी कि त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप एम० ए० ने अनेक पाली-ग्रन्थों का हिन्दी-अनुवाद पाठकों के सम्मुख उपस्थित किया है। अब अगले वर्षों में "संयुत्तनिकाय" और "खुद्दकनिकाय (के मुख्य भागों)" का हिन्दी अनुवाद छप जायगा। महाबोधि सभा इन ग्रन्थों के सुन्दर प्रकाशन के लिये कटिबद्ध है, किन्तु यहाँ हिन्दी-प्रेमियों का भी कुछ कर्तव्य है जिसका पालन वे इस प्रकार कर सकते हैं—(१) पुस्तकों को खरीद कर और उनका प्रचार कर, (२) आठ आना भेज महाबोधि-ग्रन्थमाला के स्थायी ग्राहक बनकर, (३) सौ या अधिक रुपया दे ग्रन्थमाला के संरक्षक बन।

स्थायी ग्राहकों को ग्रन्थमाला की पुस्तकें 'मज्झिम निकाय', 'विनय-पिटक' और 'दीघनिकाय' तीन-चौथाई दाम में मिलेंगी। संरक्षकों का नाम पुस्तक के साथ छाप दिया जायगा और उन्हें सभी पुस्तकें मुफ्त मिलेंगी।

हिन्दी में बौद्ध साहित्य

दीघ निकाय	५)
मज्झिम निकाय	६)
विनय-पिटक	६)
जातक-कथा (प्रथम भाग)	१)
धम्मपद	≡)
तिब्बत में सवा बरस	३॥)
बुद्ध-वचन	।≈)
भगवान् हमारे गौतम बुद्ध	–)
उदान	१)
मिलिन्द-प्रश्न	३॥)
वादन्याय (संस्कृत)	३)
बुद्धचर्या	५)
अभिधर्मकोषः (संस्कृत)	५)
वार्तिकालङ्कार (संस्कृत)	३)
तिब्बत में बौद्ध-धर्म	१॥)
बुद्ध और उनके अनुचर	१)
भगवान् बुद्ध की जीवनी	१)
बुद्ध	–)

मिलने का पता—

महाबोधि पुस्तक-भण्डार,
सारनाथ, बनारस।

प्रकाशक—धम्मजोति, महाबोधि-सभा, सारनाथ, बनारस।
मुद्रक—धम्मजोति, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, बनारस-ब्रांच।

धर्म-दूत

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्स

विषय-सूची

अपना स्वामी (ईश्वर) आपही है, दूसरा कौन स्वामी हो सकता है ? अपने इन्द्रियों को बस में करलेने से दुर्लभ स्वामित्व को पाता है ।

—भगवान् बुद्ध

वर्ष ४ अंक ७

कार्तिक पूर्णिमा बु० सं० २४८२ / वि० सं० १९९५

वार्षिक मूल्य ॥)

प्राप्त स्वीकार

"जागृति" का विजयाङ्क

सहयोगी जागृति ने अपने विजयाङ्क की एक प्रति उपहार दिया है। जागृति की वृद्धि इससे प्रतीत होती है।

"साहित्य सन्देश"

सम्पादक—**दरबारीलाल सत्यभक्त**
श्री सत्येश्वर प्रेस,
सत्याश्रम
वर्धा

इससे विदित होता है कि इसका एकमात्र ध्येय समाज-सुधार है।

"विदुषी"

सम्पादिकाएँ—**रत्नेश्वरी अग्रवाल**
लक्ष्मीबाई पाण्डेय कुसुमलता
विदुषी कार्यालय,
बनारस सिटी।

स्त्री-समाज के सुधार के लिये ऐसी पत्रिकाओं की आवश्यकता है। हम पत्रिका की उत्तरोत्तर उन्नति चाहते हैं।

"दीपक" का विशेषाङ्क

पत्रिका-जगत् में दीपक अपनी विशेषता रखता है। इसका विशेषाङ्क नवीन एवं सामयिक विचारों से सुसज्जित है।

———

धर्म-दूत

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवलपरिपुन्नं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग (विनय पिटक)

"भिक्षुओ! सर्व साधारण के हित के लिये, लोगों को सुख पहुँचाने के लिये, उन पर दया करने के लिये तथा देवताओं और मनुष्यों का उपकार करने के लिये घूमो। भिक्षुओ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्थाओं में कल्याणकारक धर्म का, उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य्य का प्रकाश करो।"

सम्पादक—धम्मानन्द

वर्ष ४ | सारनाथ, नवम्बर बु० सं० २४८२ / ई० सं० १९३८ | अंक ७

राहुल और यशोधरा

राहुल—

"जाऊँगा माँ मैं, मुझको जाने दे;
पिता, कहीं हों, उन्हें खोज लाने दे!
डरती है क्यों? मैं भी खो जाऊँगा?
नहीं-नहीं, मैं शीघ्र लौट आऊँगा।"

यशोधरा—

"उनको तो खो चुकी, तुझे भी खोऊँ?
तू ही बतला राहुल! जीवन भर रोऊँ?
रहने दे, मत जली हुई को और जला तू;
ओ मेरे सौभाग्य, कहीं मत जा तू!
"आ, देख इधर, यह उनका चित्र टँगा है—
कितना सुंदर है, क्या ही ख़ूब रँगा है!
आहत मराल पर भीगी आँख गड़ी है—
चित्रण क्या है, करुणा साकार खड़ी है!"

—'यात्री'

भिक्षु के पत्र (सं० १८)

(ले०—भदन्त आनन्द कौसल्यायन)

गोरखपुर
८—६—३८

प्रिय योगेन्द्र !

कह नहीं सकता कि तुम्हारे बिना तारीख के पत्र को मिले कितने दिन हो गये ? मैंने आज तक उत्तर न दिया। अब सोचता हूँ कि तुमने जो प्रश्न पूछे थे वे तुम्हें याद होंगे या नहीं ? कहीं कोई प्रश्न भूल न गये हो, इसलिये तुम्हारे प्रश्नों को भी दें रहा हूँ। उत्तर में इतनी देर होने के कारण जो प्रतीक्षा करनी पड़ी, उसके लिये क्षमा करना।

प्रश्न १—क्या पुण्य-पाप वास्तव में कोई चीज़ हैं ? क्या पुण्य में हिस्सा भी बँटाया जा सकता है ?

उत्तर—'पुण्य' शब्द की उत्पत्ति है पालि के 'पुनोति' शब्द से; जिसका अर्थ है पवित्रता करना; हम कोई भी काम करें, हमें प्रसन्नता होगी अथवा अप्रसन्नता, हमारे मन में पवित्रता आयेगी अथवा अपवित्रता। इस प्रसन्नता या पवित्रता का नाम है पुण्य और अप्रसन्नता या मलिनता का नाम है पाप। जिन कार्यों से व्यक्ति-विशेष को अवस्था-विशेष में प्रसन्नता-पवित्रता प्राप्त होती है और जिनसे मन की अप्रसन्नता-मलिनता होती है उन कार्यों को भी पुण्य तथा पाप कह देते हैं। बिना परिस्थिति का विचार किये किसी को पुण्यात्मा, किसी को पापी बनाने की गलती बहुत लोग करते हैं। यह सर्वथा अन्याय है। एक ही कार्य अवस्थाभेद से दो आदमियों के लिये पुण्य अथवा पाप हो सकता है। रही पुण्य में हिस्सा बँटा सकने की बात। यदि दस आदमी मिलकर किसी एक शुभ कर्म को करें तो उससे जो प्रसन्नता प्राप्त होगी उसमें दस हिस्सेदार होंगे ही। एक आदमी भी, किसी एक शुभ कर्म को करके उसके फलस्वरूप जो पुण्य मिलता है, उसमें दूसरों को भी अपना हिस्सेदार घोषित करके अपने हृदय की उदारता का परिचय दे सकता है तथा उसे बढ़ा सकता है। फिर, किसी भी कार्य में कुछ न कुछ सहायता दूसरों से प्राप्त होती ही है। इसी लिये, बर्मा में जब कोई शुभ कर्म किया जाता है, तो लोग एक घंटी बजाते हैं; जिसका मतलब होता है कि जिनके कानों में घंटी की आवाज़ पहुँचे, सभी अपने को उस पुण्यकृत्य में हिस्सेदार समझें।

प्रश्न २—क्या एक आदमी के 'पुण्य' और 'पाप' दूसरों को प्रभावित कर सकते हैं ?

उत्तर—हाँ, इतिहास में हम देखते हैं कि एक आदमी का देश-द्रोह देश को चौपट कर देता है, और एक आदमी की देश-सेवा देश का सिर ऊँचा कर देती है। उसके साथ, यह भी सत्य है कि देश जब चौपट हो जाता है, तभी उसमें देशद्रोही पैदा होते हैं और देश में जब नवजीवन का संचार होता है तभी उसमें विशेष विभूतियाँ जन्म लेती हैं। महान् पुरुष जाति की उन्नत अवस्था के परिचायक अधिक होते हैं और कारण कम।

प्रश्न ३—मनुष्य को अपना भाग्य-विधाता कहा जाता है; जिसका मतलब है कि वह जैसी चाहे वैसी परिस्थिति में जन्म ग्रहण कर सकता है। तब, क्या कारण है कि जब कोई भी आदमी अन्धा नहीं पैदा होना चाहता, तौ भी अन्धा पैदा हो जाता है ?

उत्तर—हम स्वयं अपनी इच्छाओं को ठीक-ठीक नहीं समझते। यदि हमें कोई कहे कि आप कुत्ते का जन्म ग्रहण करने की इच्छा करते हैं, तब हम नाराज हो जायँगे; लेकिन, क्या उस समय जब हम दिन-रात कुछ न कुछ खाने की ही बात सोचते रहते हैं, कुत्ते का जन्म ग्रहण करने ही की इच्छा नहीं करते? हमारी निरन्तर खाते रहने की इच्छा की इससे अच्छी पूर्ति क्या हो सकती है कि हम कुत्ते बन जायँ और दिन-रात दर-दर के टुकड़े ही खाते फिरा करें।

प्रश्न ४—"अविद्या के होने से संस्कार और संस्कार के होने से विज्ञान की उत्पत्ति होती है।" यदि यह बात ठीक है तो अगणित पशु-पक्षि कीट-पतंगादि में विज्ञान है या नहीं? (वृक्षों में न सही)

उत्तर—आदमी ही नहीं, पशु-पक्षी तथा कीट-पतंग आदि सभी प्रतीत्य-समुत्पाद के नियम के आश्रित हैं। अपने और इतर प्राणियों में यह समानता रुचिकर न होने से हमें जल्दी मान्य न होगी; लेकिन मान्य क्यों न हो?

प्रश्न ५—यदि कर्म ही सब कुछ है तब तो हम कर्म के बन्धन में जकड़े हुए हैं। हम उससे किसी प्रकार मुक्त हो ही नहीं सकते?

उत्तर—'कर्म' शब्द से हमें पिछले जन्म के कर्म ही नहीं समझने चाहिएँ। आदमी अपने किये को भोगता है; लेकिन, जो कुछ आदमी भोगता है वह किये का फल ही नहीं होता। पिछले किये कर्मों के अतिरिक्त आदमी को सुखी या दुखी बनानेवाले और भी कारण हैं; जैसे, ऋतु-परिवर्तन आदि। यदि किसी के सिर में दर्द हो, तो उसको हमेशा पाप का ही परिणाम समझना ग़लती है। सर्दी-गर्मी के प्रकोप से निष्कलंक से निष्कलंक आदमी को भी सिर दर्द हो सकता है।

हमारे पिछले कर्म हमें प्रभावित करते हैं, लेकिन हमारे रास्ते को सर्वथा कभी नहीं रोक सकते। माना कि हम इतने 'स्वतन्त्र' नहीं कि हमारा गये-कल का जीवन आज के जीवन को प्रभावित न करे, लेकिन हम इतने परतन्त्र भी नहीं हैं कि हम आज नया कुछ कर ही न सकें, अपनी इच्छा के अनुसार अपने आगामी कल को बना ही न सकें। देर में या जल्दी से हम अपने भविष्य को जैसा चाहें वैसा ढाल सकते हैं।

प्रश्न ६—"निर्वाण में यदि सत्त्व का ध्वंस हो जाता है; बाद को कोई विज्ञान या सत्य नहीं रहता, तो उच्छेदवादी नास्तिक भी तो यही कहते हैं कि मरने के साथ ही जीव का ध्वंस हो जाता है; फिर उस व्यक्ति का कोई जीवात्मा नहीं रहता। इन दोनों दार्शनिक सिद्धान्तों में क्या भेद और विशेषता है"?

उत्तर— नैरात्म-वादी 'सत्त्व' का 'ध्वंस' मानते हों सो बात नहीं; सत्त्व का अस्तित्व ही नहीं मानते। ध्वंस तो तब हो जब अस्तित्व हो। उच्छेदवादी 'सत्त्व' का अस्तित्व मानते हैं, और 'ध्वंस' भी मानते हैं।

नैरात्म-वादी, आत्म-पुद्गल-जीव का अस्तित्व न मानने से 'अहंकार'-रहित हो सकता है। 'अहंकार'-रहित होने से तृष्णा-रहित हो सकता है। तृष्णा रहित-होने से जाति-जरा-मरण के बन्धन से छूट सकता है।

उच्छेदवादी सत्त्व का अस्तित्व मानने से (भले ही वह चार महा-भूतों में ही सत्त्व संज्ञा का आरोपण करे) 'अहंकार'-रहित नहीं हो सकता। 'अहंकार'-रहित न हो सकने से तृष्णा-रहित नहीं हो सकता। तृष्णा-रहित न हो सकने से जाति-जरा मरण के बन्धन से नहीं छूट सकता।

जीव का अस्तित्व माननेवालों के भाग्य में एक ही चीज़ लिखी है, फिर चाहे वह शाश्वत-वादी हों, चाहे उच्छेदवादी। जीव का भ्रम अहंकार का मूल है और अहंकार सब पापों का।

संक्षेप में तुम्हारे सभी प्रश्नों का उत्तर आ गया न ? मुझे मालूम होता है कि इनमें से एक-दो प्रश्न तुम्हारे अपने नहीं हैं। किसी के हों, मैंने उत्तर दे दिया है। उन्हें यदि मेरे उत्तर से सन्तोष न हो, तो कह देना कि सीधा लिखकर पूछ लें।

तुम क्यों मुफ़्त में बीच के बिचौलिया बनते हो ?

मैं तीन महीने से यहाँ गोरखपुर में हूँ। अभी इधर ही रहूँगा। चिट्ठी देनी हो तो c/o श्री महावीरप्रसाद जी पोद्दार, उर्दू बाज़ार, गोरखपुर लिखना।

शुभेप्सु—
आनंद कौसल्यायन

वर्ण-भेद और पुरोहित-शाही

(ले०—श्री हरदयाल, एम० ए०, लंदन)

"विजयनगर का राजा जाति-भेद की भावना से दुर्बल हो गया था। हिंदुओं ने वर्ण-भेद का ऐसा प्रचण्ड पचड़ा खड़ा किया कि इस जाल में फँसकर समूचे समाज को हाथ-पाँव हिलाने की भी शक्ति न रही। ब्राह्मणों को सहस्रों अधिकार थे। इनका मतलब केवल यह था कि जगत् को लूटा जाय। विद्या भी इस वर्ण के हाथ चली गई थी। शेष वर्णों को विद्या की उन्नति से कोई सम्बन्ध न था। इनका अस्तित्व राष्ट्र की निर्बलता का कारण था; क्योंकि इन्हें राज्य में सहयोगी बनाने का कोई प्रयत्न नहीं किया जाता था। ये जैसे पड़े हैं वैसे ही पड़े रहें; यही ब्राह्मणों का सिद्धान्त था। ऊँचे वर्णों के बीच भी विवाह और खान-पान के बन्धन ऐसे थे कि एकता का विचार ही लुप्त हो गया था। प्रत्येक व्यक्ति केवल अपने वर्ण या बिरादरी के संकीर्ण क्षेत्र के भीतर ही अपने सामाजिक जीवन की कल्पना करता था।

स्वराज्य केवल एक दूर का स्वप्न मालूम होता था। अब तक यह हाल है कि हिन्दू भाई अपनी जाति-सभाओं तथा कान्फ्रेन्सों के लिए तो ख़ूब दिलचस्पी दिखाते हैं, परन्तु हिन्दू-सभा की सुध नहीं लेते। प्रत्येक मनुष्य के मित्र और साथी भी बहुधा उसकी बिरादरी के लोग ही होते हैं। विवाह आदि के अवसर पर जाति-भाई ही बुलाये जाते हैं। एक समय की बात है कि दिल्ली की म्युनिसिपल कमेटी के लिए एक सभासद का चुनाव होना था। एक उम्मीदवार वैश्य थे और दूसरे कायस्थ। बस, फिर क्या था, इस चुनाव में किसी ने यह नहीं पूछा कि इन दोनों सज्जनों में कौन अधिक योग्य है या

कौन अधिक उत्तम सिद्धान्त रखता है। बस, सारा चुनाव कायस्थों और बनियों के बीच एक प्रतियोगिता की परीक्षा बन गया। कायस्थों ने कायस्थ के लिये सम्मति दी, और वैश्यों ने वैश्य का पक्ष लिया। यह खूब तमाशा हुआ। यदि किसी से पूछा जाय कि तू कौन है, तो वह जरूर यही उत्तर देगा कि मैं "गौड़" हूँ या "अग्रवाल" हूँ इत्यादि। परन्तु, यदि किसी मुसलमान से यही प्रश्न किया जाय कि "तू कौन है?" तो वह बिना संकोच के कहेगा कि "मैं मुसलमान हूँ।" जब तक जाति-भेद का भाव ऐसा सामान्य और गहरा रहेगा, तब तक हिन्दू जाति को स्वराज्य नहीं मिल सकेगा। हिन्दूमात्र के सूर्य के प्रकाश में ये सब छोटे टिमटिमाते दीपक अब बुझा देने चाहिएँ। परन्तु, जब तक खान-पान और शादी-ब्याह की बाधाएँ स्थिर रहेंगी, तब तक लोगों का मनोभाव नहीं बदलेगा; क्योंकि दैनिक रीति-रवाजों से ही हमारे विचारों का प्रवाह बनता है। अब लाहौर में जात-पाँत-तोड़क-मण्डल भी बन चुका है। इसके सदस्य इस सुधार के लिए तैयार हैं। इस मंडल के चारों ओर सब देश-भक्तों को इकट्ठा करके हमें जात-पाँत की शृङ्खलाओं को सदा के लिए तोड़ देना चाहिए ताकि हम दूसरे वर्ण में भी विवाह-शादी कर सकें। इन चार नामों--ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—को जाने दो। अब तो सब शूद्र ही हैं। आज कौन ब्राह्मण है और कौन क्षत्रिय? ब्राह्मण और क्षत्रिय की पदवी तो अँगरेजों को मिली है। इतने करोड़ कीड़े-मकोड़ों पर क्या किसी को गर्व हो सकता है? आज कोई ऊँचा नहीं और कोई नीचा नहीं। हमें न चार वर्णों की आवश्यकता है, न तीन की और न दो की। यदि हिन्दुओं में जाति-भेद का पाखण्ड न होता तो इतने हिन्दू कभी अपनी इच्छा से इसलाम धर्म स्वीकार न करते। लाखों हिन्दू स्वेच्छा से मुसलमान हुए थे, सदा बलात्कार से ही काम नहीं लिया गया था। वर्ण-भेद का यह टण्टा हिन्दू-धर्म और जाति में निर्बलता का कारण रहा है। इसी कारण से गुरु नानक और गुरु गोविंदसिंह ने इस प्राचीन संस्था को बिलकुल मिटा देने की शिक्षा दी। इस भीतरी शत्रु को जीतकर दूसरों का सामना करना आसान है।

खेद है कि शताब्दियों के लम्बे काल में भी हिन्दुओं ने यह मोटी बात नहीं समझी। यदि समझी भी तो इस पर ध्यान नहीं दिया। इन्हें मरना और मिट जाना स्वीकार है, परन्तु सुधार करना असंभव मालूम होता है। अभी वर्ण-भेद को मिटाने की बात करो तो सहस्रों युक्तियाँ वेद और शास्त्रों से निकालकर लायेंगे। इन्हें अँगरेज़ों के दास बनकर रहना पसंद है, और लाखों भाइयों को अन्य मतों के गढ़े में ढकेल देने पर भी रंज नहीं होता, परन्तु जात-पाँत का अभिमान सदा प्यारा है। ये विचित्र मूर्ख हैं। दुनिया में मूर्ख बहुत हैं, परन्तु ऐसे मूर्ख तो न कभी देखे और न सुने। बस, अब युवकों का कर्त्तव्य है कि वे अति-वादी भी बन जायँ तो कोई दोष नहीं, क्योंकि रोग भी पराकाष्ठा को पहुँच चुका है। इसलिए, जात-पाँत-तोड़क-मण्डल का यह उद्देश्य होना चाहिए कि हम न ब्राह्मण हैं, न क्षत्रिय, न वैश्य और शूद्र, न अग्रवाल, न सक्सेना; वरन् सब हिंदू हैं, और हिंदू-राज्य के नागरिक बनेंगे। वर्ण-भेद की मैली-कुचैली, अँधेरी, कोठरियों को गिराकर अब विशाल भवन तैयार करना चाहिए, जिस पर हिंदू-स्वराज्य के आदर्श का झण्डा लहरा सके।

विजयनगर राज्य क्षत्रिय-धर्म की असावधानी से निर्बल हो गया था। इस युग में प्रत्येक राज्य की रक्षा सेना से होती थी। हिंदू-समाज में केवल एक वर्ग अर्थात् क्षत्रिय को ही शस्त्रों का उपयोग सिखाया जाता था। शेष सारी प्रजा शान्तिप्रिय और शान्त-स्वभाव बन गई थी। अतः, जब थोड़े से क्षत्रिय परास्त हो गये तब फिर राज्य दूसरी लड़ाई भी न लड़ सका। लाखों किसानों, मज़दूरों और व्यापारियों ने तो कभी सैनिक-शिक्षा पाई ही न थी। अतएव, वे नागरिकों का प्रथम कर्त्तव्य भी पूरा नहीं कर सकते थे। हम देखते हैं कि लड़ाई के अवसर पर योरप में प्रत्येक व्यक्ति को सैनिक बनना पड़ता है, चाहे वह विद्वान् हो चाहे अपढ़, धर्म-प्रचारक हो या साधारण मनुष्य। प्रोफ़ेसरों और पादरियों से भी यह सेवा ली जा सकती है। कोई व्यक्ति छोड़ा नहीं जा सकता। क्योंकि राज्य की रक्षा करना सब का समान कर्त्तव्य है। शोक है कि वर्ण-भेद के सिद्धान्त में क्षात्र-धर्म को केवल एक समूह के लिए नियत करके दूसरे करोड़ों हिन्दुओं को भेंड़-बकरियों के सदृश बना दिया गया। अतएव, पहाड़ी भेड़िए उनको सुगमता से खा गये। प्रत्येक हिंदू को अब क्षत्रिय बनना चाहिए, चाहे उसका व्यवसाय कुछ भी हो। जो व्यक्ति शस्त्रों का उपयोग नहीं जानता वह केवल दास और कायर है। हिंदू-राज्यों में प्रत्येक हिंदू को भी सरकार की ओर से ऐसा प्रबन्ध कराने का प्रयत्न करना चाहिए।

वर्ण-भेद भारत के लिये एक शाप है। जाति-भेद ने, चाहे वह किसी रूप में हो, हमें दासों का राष्ट्र बना दिया है। दो हजार वर्ष से अधिक हुए, नवीन हिंदू-धर्म के अदूर-दर्शी पंडित पुरोहितों ने समझा कि वे अन्य वर्णों को उच्च शिक्षा से वंचित करके और उन्हें परस्पर-विरोधी दलों में विभक्त करके अपने वर्ण के लिए स्थायी शक्ति और आधिपत्य प्राप्त कर सकते हैं। हिन्दुओं को आपस में खुल्लमखुल्ला बेटी-व्यवहार करने से रोका गया और उन्हें एक दूसरे के पास खाने-पीने को मना किया गया। क्या इससे अधिक अन्ध-मूर्खता कोई और हो सकती थी? ब्राह्मण अपने मनसूबों की सफलता पर फूले न समाते थे। समाज-व्यवस्था ने थोड़े समय के लिए हिन्दू भारत को बनावटी महिमा और एकता प्रदान की। परन्तु यह एक झूठा उषः-काल था। यह ब्राह्मण प्रपंच और वर्ण-भेद स्वस्थ समाज के लिए दृढ़ आधार का काम न दे सका। ब्राह्मणों ने वस्तुतः उसी डाली को काट डाला जिस पर वे बैठे हुए थे। इस दुःखमय प्रहसन का अन्त और विनाश शताब्दियों की दासता में हुआ।

पंडित-पुरोहित हमारे मालिक बने हुए हैं; परन्तु आप और हम सब विदेशियों के गुलाम हैं। यह वर्ण-भेद के बन्धनों का ही कड़वा फल है। इतिहास की चक्कियाँ धीरे-धीरे पीसती हैं। भारत को न तो मुसलमानों ने नष्ट किया और न अँगरेजों ने ही, वरन् हमारा शत्रु हमारे अपने ही अन्दर मौजूद है। **हमारे पण्डे-पुरोहितों ने हमारा वध कर डाला है।** यह एक ऐतिहासिक सचाई है कि हिन्दू-समाज कई बार आत्म-हत्या का घोर पाप कर चुका है।

अब प्रश्न यह है कि वर्ण-भेद के काले नाग और अतीव विषैले साँप के घातक प्रभावों को दूर करनेवाली राम-बाण औषधि कहाँ से प्राप्त हो सकती है? कई वैष्णव और वर्त्तमान काल के दार्शनिक तथा सुधारक जाति-भेद के विरुद्ध प्रचार करते रहे हैं। वे और उनके काम अति सराहनीय हैं। फिर भी हम देखते हैं कि वे कुछ सफलता नहीं

प्राप्त कर सके। जाति-भेद ऐसा राक्षस है जिसके विध्वंस और शक्ति-नाश के लिये किसी बड़ी भारी शक्ति की आवश्यकता है। हमें इस जात-पाँत के राक्षस का नाश कर देना चाहिए नहीं तो यह हमें जरूर नष्ट कर डालेगा। जाति-भेद का अन्त हो जाना चाहिए। धीरे-धीरे इसकी समाप्ति करने से काम न चलेगा, वरन् इसे फौरन् ऐसे पूर्ण रूप से नष्ट कर डालना चाहिए कि इसके बचने की कोई सम्भावना ही न रहे।

हमारी प्रतिज्ञा यह होनी चाहिए कि हम कभी वर्ण-भेद के साथ समझौता नहीं करेंगे। न तो हमें चार वर्णों की आवश्यकता है, न तीन की, न दो की। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के संस्कृत शब्द नवीन भारत के शब्दार्थ-कोष से निकाल दिये जाने चाहिए। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि हम मनुष्य और हिन्दू हैं और हमारे भिन्न-भिन्न व्यवसाय हैं। हम भारत के सच्चे नागरिक और राष्ट्र-संघ के सदस्य भी हैं। यही हमारे नवीन नाम और परिभाषाएँ हैं। अब हमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का हानिकारक विभाजन बिलकुल दूर कर देना चाहिए। हाँ, इन चार शब्दों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की अर्थी निकालकर इनको दबा देने के लिए राजपूताने के रेतीले प्रदेशों के कुओं से भी गहरी कब्रें खोदी जायँ जिससे यह अपशकुन-सूचक शब्द—जिससे असमता, घृणा, द्वेष, निर्बलता और दासता, की दुर्गंध आती है—फिर अपनी शकल न दिखा सके। तब, और तभी हम ऐसे मीठे शब्दों का निर्माण कर सकेंगे जो जीवन का संचार करनेवाले होंगे, जैसे "हिन्दू भारत", "महाराष्ट्र, हिन्दू देश गुजरात", "प्रजातंत्र" और "स्वराज्य", "साम्यवाद" और दूसरे ऐसे ही शब्द जो भविष्य में हमें बीज-मंत्र का काम दे सकें।

ब्राह्मणों ने पाली भाषा का भारत में मूलोच्छेद कर दिया। उनको पाली से बुद्ध-धर्म के दार्शनिक सिद्धान्तों या नैतिक शिक्षा के कारण घृणा नहीं थी, वरन् उन्होंने गौतम बुद्ध को जगद्गुरु और अवतार मान लिया। वे चाहते तो यह थे कि बुद्ध की अद्भुत वाणी भारत में सुनाई न पड़े; क्योंकि इस वाणी में वर्ण-भेद के बोदे किले को उड़ा देने की शक्ति भरी थी। उन्होंने कहा (जैसा कि कुछ अँगरेज़ आज-कल कहते हैं कि चाहे सारा संसार नष्ट हो जाय, परन्तु हमारा अफ्रीका और एशिया पर अधिकार अवश्य जमा रहे और हम उनका रक्त चूसते रहें) पाली नष्ट हो जाय, भारत नष्ट हो जाय, परन्तु हमारे ब्राह्मण वर्ण का आधिपत्य रहे। भारतीय इतिहास के उस युग का यह सूत्र है।

वर्ण-भेद-विध्वंस करने के महान् कार्य में पाली का अध्ययन हमें प्रबल साधन का काम देगा; क्योंकि यह भाषा हमें सीधे भगवान् बुद्ध के चरणों में ले जाकर खड़ा कर देगी और हम उस सिंह-नाद को सुन सकेंगे जो भगवान् बुद्ध ने वर्ण-भेद का नाश करने के लिये किया था। नानक, कबीर, केशवचन्द्र सेन और दयानन्द भी जाति-भेद पर आक्रमण कर चुके हैं; परन्तु गौतम की वाणी में महान् शक्ति है। अनेक महात्मा एक ही बात कहते हैं, परन्तु उनमें से उच्च कोटि का सुधारक मनुष्यों को शिक्षा पर चलने के लिए बाध्य कर देता है और छोटे दर्जे का केवल उन्हें ऐसा करने को कहता ही है। लोगों को कोई उपदेश देने और उसके करने के लिए शक्ति-प्रदान करने में बड़ा अन्तर है। हमें अपने राष्ट्र के प्राचीन साहित्य से बुद्ध के उन अनमोल वचनों को खोज निकालना चाहिए जिन्होंने अपने समय में भारत में वर्ण-भेद का उच्छेद कर डाला था। हमारे मध्यकाल के और

आधुनिक महात्मा हमें जगा रहे हैं। आओ, हम बुद्ध की उस प्रबल वाणी को भी सुनें जिसको मानव-समाज कभी भूल न सकेगा और जो वाणी वर्ण-भेद को नष्ट कर मिट्टी में मिला देनेवाली है। हमें लोगों को बताना चाहिए कि किस प्रकार भगवान् बुद्ध का जन्म वर्ण-भेद का अन्त करके मनुष्य-जाति को उससे बन्धनमुक्त करने के लिए हुआ।

हमें धोखे में नहीं रहना चाहिए। इसी जाति-भेद ने गुरु गोविन्दसिंह के काम को नष्ट कर डाला था और इसी ने मराठों की शक्ति का नाश किया। महाराज रणजीतसिंह ने जो भव्य सेना तैयार की थी उसके नाश तथा उसके विध्वंस का कारण पण्डे-पुरोहित और जाति-भेद की प्रथा ही थी। परन्तु जब तक भारत वर्णभेद के बन्धनों में जकड़ा है तब तक उसे स्वराज्य प्राप्त नहीं हो सकता और यदि किसी प्रकार हो भी जाय तो वह स्थिर नहीं रख सकता। पण्डे-पुरोहित और वर्ण-भेद दोनों का उत्थान और पतन इकट्ठा होगा। इसलिए सब हिन्दू राजनीतिक दलों का कर्तव्य है कि वे जाति-भेद को चटपट नष्ट कर डालने के सिद्धान्तों को स्वीकार करें और इसको क्रियात्मक रूप देने के लिए प्रयत्न करें। हमको भिन्न-भिन्न वर्णों के बीच शादी-विवाह की प्रथा जारी करनी चाहिए और एक दूसरे के साथ सहभोज करने पर जोर देना चाहिए।

गुरु गोविन्दसिंह ने अनुभव से यह शिक्षा प्राप्त की थी कि जब तक हिन्दू वर्ण-भेद-उच्छेद को स्वीकार नहीं करते, विफल होकर उनके टुकड़े-टुकड़े हो जाना अवश्यम्भावी है। आप धुआँधार भाषण झाड़ सकते हैं, प्रस्ताव पास कर सकते हैं, परन्तु यदि आप पर्याप्त काल तक जीवित रहें तो मिलकर कोई काम नहीं कर सकते। मुझे क्रियात्मक राजनीतिक कार्य का कुछ अनुभव है। यदि मक्कार पुरोहितों और वर्ण-भेद को जीता रहने दिया गया तो हमारे योद्धा चाहे घोर संग्राम करते रहें और हमारे हुतात्मा चाहे युवा अवस्था में ही अपने जीवन की आहुति देते रहें, परन्तु मक्कार और खुर्राट ब्राह्मणों की पुरोहितशाही उनके कार्य को शीघ्र ही नष्ट कर देगी।"

भिक्षाटन

अनुवादक—भिक्षु धम्मरतन (लंका)

(क्रमशः)

कुररघड़ के पास पहुँचकर आयुष्मान् अनुरुद्ध ने सोचा "मैं क्या करूँ? क्या मैं सीधे महासुभूति के यहाँ जाऊँ अथवा विनय-नय के अनुसार घर घर भिक्षा माँगूँ?" आखिर, उन्होंने नियमों का पालन करना निश्चय कर लिया।

झुकी हुई आँखोंवाली वह शान्त मूर्ति एक हाथ में भिक्षा-पात्र लेकर गाँव के पहले घर के सामने खड़ी हो गई। किसी-किसी ने तो केवल गाली देकर उन्हें लौटा दिया। किसी-किसी ने कुछ देते हुए भी उन्हें मिथ्यावादी बनाया। लेकिन, वे निष्काम पुरुष सब के प्रति सम भाव रखते थे। जब उनके पात्र में पर्याप्त भोजन इकट्ठा हो गया तो वे उसे ग्रहण करने के लिये एक पेड़ की शीतल छाया में चले गये।

उनके गाँव के चौराहे के पास पहुँचने पर एक सज्जन ने उनसे पूछा—"क्या आप भगवान् बुद्ध के कोई शिष्य हैं ?"

श्रमण ने कहा—"हाँ, मैं भगवान् बुद्ध का 'अनिरुद्ध' नामक शिष्य हूँ।"

ब्राह्मण ने कहा "अच्छा, मैं राजगृह में भगवान् से मिला था; उन्होंने मुझसे बौद्ध-दर्शन में पारङ्गत अपने शिष्य अनिरुद्ध के विषय में कहा था। सचमुच यदि आप अनिरुद्ध हैं तो मैं अपने यहाँ आपका स्वागत करता हूँ। भन्ते! कृपा कर आज मेरे यहाँ भोजन करें और हमारे ऊपर दया करके कल होनेवाले मेरी पुत्री के विवाहोत्सव को पवित्र बनावें।"

अनिरुद्ध ने जवाब दिया—"आज मुझे इस पेड़ की छाया में भोजन करने दें। कल मैं आपके यहाँ उपस्थित हो जाऊँगा।"

सुभूति ने कहा—"आपकी इच्छा। हमारा दरवाजा आपके लिये सदा खुला रहेगा।"

विवाह

सुभूति का भवन ध्वजा-पताका इत्यादि से सुसज्जित था। वर-वधू के स्वागत के लिये आँगन में एक सुन्दर मण्डप बना था, गाँव के सब लोग जुलूस देखने के लिये फाटक के पास इकट्ठे थे।

सुदत्त अपनी मित्र-मण्डली के साथ कन्या के पिता के पास गया। भद्र ब्राह्मण उसका सादर स्वागत कर पूजासन के पास ले गया जहाँ कि उसकी पत्नी तथा पुत्र कच्चायन भी प्रस्तुत था। वहाँ सुभूति ने वर को मधुपान कराया और वधू को बहुमूल्य वस्त्राभूषण प्रदान किया।

तत्पश्चात् सुभूति ने वर को सम्बोधित करते हुए कहा "किसी भी ब्राह्मण का यह निजी कर्तव्य है कि वह अपनी कन्या के लिये एक सुयोग्य वर और अपने पुत्र के लिये एक सुशीला ब्राह्मण-कन्या का प्रबन्ध कर शास्त्रों के अनुसार उनका विवाह कर दे। सुदत्त, पुत्री के योग्य वर जानकर, मैंने तुम्हें चुना है। तुम जाति के ब्राह्मण हो और तुम्हारे हस्त-पाद इत्यादि सब अङ्ग-प्रत्यंग सुसंगठित हैं। तुम्हारा श्यामल केश है, तुम्हारा वर्ण श्वेत है, तुम्हारी चाल सुन्दर है और तुम्हारी वाणी मधुर है। तुम त्रिवेदज्ञ हो और तुम्हारा आचरण शुद्ध है। तुम्हारे माता-पिता सम्माननीय हैं और मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम दाम्पत्य धर्म का पालन करोगे। सुख-दुःख दोनों में मेरी पुत्री तुम्हारी सच्ची अर्धाङ्गिनी रहेगी और तुम्हारी परम्परागत सन्तान तुम्हारी ही भाँति रहेगी। अब वधू तैयार है, तुम मिलन का नियम पूरा करो।"

तब वर तथा वधू अपने-अपने साथी, सहेली तथा अन्य अतिथियों के साथ वर के घर के लिये रवाना हो गये। उनके साथ एक पुरोहित भी गया जो कि होम कुण्ड की राख लिये हुए था। विवाह का जुलूस निकलते समय लोगों ने पुष्प-वृष्टि करते हुए वर-वधू का अभिनन्दन किया। घर पहुँचने पर सुदत्त नव-विवाहिता को अपने घर के अन्दर ले गया। आग जलाई गई और हवन के समाप्त होने पर वर-वधू ने तीन बार अग्नि-देव की प्रदक्षिणा की। तब वे एक रङ्गीन मृग-चर्म पर बैठ गये और वधू की गोद

में एक बालक बिठाया गया। एक सम्माननीय पुरोहित ने, जो कि वर के ताऊ थे, वधू की शुभ-कामना करते हुए आशीर्वाद दिया—"इस घर में प्रकाश फैलानेवाले पवित्र अग्निदेव तुम्हारी रक्षा करें, तुम्हारी सन्तान हर प्रकार से सफलता को प्राप्त करे और तुम धीर-वीर पुत्रों की माता बनो।"

तब वर ने बुझे हुए जौ की एक मुट्ठी अपनी सहधर्मिणी को देते हुए कहा—"हमारे इस मिलन के निरंतर सुख के लिये अग्निदेव आशीर्वाद दें।"

सम्पादकीय वक्तव्य

अहिंसा का निग्रह

जब मनुष्य शक्ति के प्रमाद में अन्धा हो जाता है, तब उसे न्याय और अन्याय कुछ नहीं सूझता। धर्माधर्म, शुभाशुभ, उचितानुचित की कल्पना ही उसके हृदय से विलीन हो जाती हैं। उसके लिए एक मात्र "Might, is right" अर्थात् "शक्ति ही युक्ति है"। वही उसका धर्म है, वही कर्तव्य है और वही सर्वस्व। उसके विरुद्ध कोई व्यक्ति-विशेष ही नहीं, वरन् यदि सारा संसार सिर उठाये तो भी वह विचलित नहीं होता। वह अपने एकमात्र दृढ़ सङ्कल्प पर अटल रहता है।

परिस्थिति के अनुसार मनुष्य में परिवर्तन होते रहते हैं। वही उसे दुर्बल या शक्तिमान् बनाती है। उसके धार्मिक या अधार्मिक भाव इसी पर निर्भर हैं। दुष्ट को धार्मिक बनाने में तथा धार्मिक को धर्म के पथ से विचलित कर देने में परिस्थिति समर्थ है। राजनैतिक परिस्थिति ने ही समस्त संसार का परिवर्तन किया और करती रहती है। हाँ, मनुष्य भी कभी-कभी परिस्थिति को परिवर्तित कराने में कृतकार्य होता है; तथापि परिस्थिति की प्रेरणा इतनी प्रबल है कि वह मनुष्य से उसकी आन्तरिक इच्छा के प्रतिकूल भी काम कराती है। जिसका वह त्याग करना चाहते हैं उसे ही उन्हें ग्रहण करना पड़ता है; अतः कर्म करने में मनुष्य पूर्ण रूप से स्वतन्त्र नहीं समझा जाता, आवश्यकता एवं परिस्थिति के अनुकूल आचरण करने के लिये मनुष्य बाध्य हो जाता है। कर्म कर्त्ता पर विजय प्राप्त कर लेता है। वर्तमान युग इस कथन की समीक्षा करता है और आधुनिक संसार इसका उदाहरण है। युद्ध की घोषणा चारों ओर से सुनाई देती है। शक्ति ने युक्ति पर आक्रमण किया है। यूरोप और एशिया दोनों युद्ध-कामना में तल्लीन हैं। जीवन को तोप का लक्ष्य बना दिया गया है। जीवन को मृत्यु की वेदी पर बलि किया जा रहा है।

चीन और जापान दोनों एक ही मतावलम्बी होते हुए, और अहिंसा को अपने धर्म का एक मुख्य अङ्ग मानते हुए भी आपस में लड़ रहे हैं। इसका क्या कारण है? वे बौद्ध होकर लड़ते क्यों हैं? यह प्रश्न लोग अकसर पूछा करते हैं। मैं समझता हूँ कि उपर्युक्त कथन द्वारा इसका समाधान हुआ है।

धर्म मनुष्य का आलिङ्गन नहीं कर सकता, वरन् मनुष्य को चाहिए कि धर्म का आलिङ्गन करे। यदि वे धर्म के प्रतिकूल चलें तो वह धर्म का दोष नहीं, बल्कि मनुष्य की ही कमी है।

धर्म और राजनीति के विषय में भी कुछ विचार करना स्थानोचित है। धर्म का ध्येय राजनीति के ध्येय से कुछ भिन्न है; तथापि धर्म में राजनीति का स्थान अवश्य है, जिसके बिना राजनीतिज्ञों के लिये धर्मावलम्बन करना असम्भव होता है।

सिंह सेनापति के प्रश्नों का उल्लेख यहाँ पर उपयुक्त है। सिंह सेनापति को किसी युद्ध में जाना पड़ा। उस समय भगवान् बुद्ध का दर्शन करने के लिये उनकी प्रबल आकांक्षा हुई। वे बुद्धानुयायी न थे। वे थे एक अन्यमतावलम्बी। भगवान् बुद्ध की प्रशंसा सुनकर वे इतने आकृष्ट हुए कि उनके दर्शन के बिना उनसे न रहा गया। सिंह के गुरु अन्य तीर्थकों ने उनको रोकने की चेष्टा की। उन्होंने कहा कि सिंह! गौतम के पास जाने से तुम्हारा कल्याण नहीं हो सकता। तुम्हारा जाना व्यर्थ है। गौतम अकर्म-वादी है। यद्यपि तीर्थकों ने विरोध किया, तथापि सिंह अपनी आन्तरिक इच्छा से प्रेरित होकर भगवद्दर्शनार्थ गये। भगवान् को देखकर वे अत्यन्त प्रसन्न हो गये। उनके आनन्द की सीमा न रही। तदनन्तर सेनापति ने भगवान् से पूछा—भगवन्! मैं आप से एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ। मैंने सुना है कि आप शून्यवादी हैं और आप कर्मफल और कर्म करनेवाले जीव को नहीं मानते हैं। यह समाचार सत्य है अथवा निराधार है?

भगवान् ने कहा—सिंह! इसमें कुछ सत्य और असत्य दोनों हैं। मैं शून्यवादी भी हूँ और अशून्यवादी भी। मैं किसी-किसी की शून्यता और किसी-किसी की अशून्यता सिखलाता हूँ; अर्थात् लोभ, द्वेष, मोह को शून्य कर देना और करुणा, शान्ति एवं त्याग का प्रतिपालन करना।

अनन्तर सिंह ने और एक प्रश्न पूछा—महानुभाव! आप अहिंसावादी हैं। अहिंसा का प्रचार कर रहे हैं। मैं एक योद्धा हूँ। सरकार की ओर से मैं सेनापति बनाया गया हूँ; अतएव अपने देश, भाई, बन्धु, ज्ञाति, मित्र और सम्पत्ति की रक्षा के लिए मुझे युद्ध करना और शत्रु से लड़ना अनिवार्य है। आपका धर्म तो सबके प्रति प्रेम करना है। ऐसी अवस्था में मेरा क्या कर्तव्य है? क्या मुझे उचित है कि अपने देश और सम्पत्ति से निरस्त हो शत्रुओं की दासता स्वीकार करूँ?

भगवान् ने कहा—नहीं सिंह! मैं ऐसा नहीं कहता। सबसे प्रेम भाव रखने के लिए मैं अवश्य कहता हूँ। साथ ही साथ दण्डनीय पुरुष को दण्ड देना और सहयोग देने योग्य व्यक्ति के साथ सहयोग देना भी मैं सिखलाता हूँ।

"महाराज! चोर को इस तरह दबाना चाहिए। यदि उसे डाँट-डपट करना उचित हो तो डाँट-डपट करना चाहिए, दण्ड देना उचित हो तो दण्ड देना चाहिए, देश से निकाल देना उचित हो तो देश से निकाल देना चाहिए और यदि फाँसी ही उपयुक्त हो तो फाँसी दे देनी चाहिए।"

"भन्ते! क्या जो चोरों को फाँसी देने की बात है वह बुद्ध-धर्म के अनुकूल है? नहीं महाराज! जो चोरों को फाँसी दी जाती है वह बुद्ध धर्म के आदेशानुसार नहीं; बल्कि उनके कर्मों के अनुसार।"

"मिलिन्द प्रश्न"

रजिस्ट्री की संख्या ए २७६२

सूचना

हिन्दी-प्रेमियों को यह सुनकर प्रसन्नता होगी कि त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप एम० ए० ने अनेक पाली-ग्रन्थों का हिन्दी-अनुवाद पाठकों के सम्मुख उपस्थित किया है। अब अगले वर्षों में "संयुत्तनिकाय" और "खुद्दकनिकाय (के मुख्य भागों)" का हिन्दी अनुवाद छप जायगा। महाबोधि सभा इन ग्रन्थों के सुन्दर प्रकाशन के लिये कटिबद्ध है, किन्तु यहाँ हिन्दी-प्रेमियों का भी कुछ कर्तव्य है जिसका पालन वे इस प्रकार कर सकते हैं—(१) पुस्तकों को खरीद कर और उनका प्रचार कर, (२) आठ आना भेज महाबोधि-ग्रन्थमाला के स्थायी ग्राहक बनकर, (३) सौ या अधिक रुपया दे ग्रन्थमाला के संरक्षक बन।

स्थायी ग्राहकों को ग्रन्थमाला की पुस्तकें 'मज्झिम निकाय', 'विनय-पिटक' और 'दीघनिकाय' तीन-चौथाई दाम में मिलेंगी। संरक्षकों का नाम पुस्तक के साथ छाप दिया जायगा और उन्हें सभी पुस्तकें मुफ्त मिलेंगी।

हिन्दी में बौद्ध साहित्य

दीघ निकाय	५)
मज्झिम निकाय	६)
विनय-पिटक	६)
जातक-कथा (प्रथम भाग)	१)
धम्मपद	≡)
तिब्बत में सवा बरस	३॥)
बुद्ध-वचन	।≈)
भगवान् हमारे गौतम बुद्ध	–)
उदान	१)
मिलिन्द-प्रश्न	३॥)
वादन्याय (संस्कृत)	३)
बुद्धचर्य्या	५)
अभिधर्मकोष: (संस्कृत)	५)
वार्तिकालङ्कार (संस्कृत)	३)
तिब्बत में बौद्ध-धर्म	१॥)
बुद्ध और उनके अनुचर	१)
भगवान् बुद्ध की जीवनी	१)
बुद्ध	–)

मिलने का पता—

महाबोधि पुस्तक-भण्डार,
सारनाथ, बनारस।

प्रकाशक—धम्मजोति, महाबोधि-सभा, सारनाथ, बनारस।
मुद्रक—धम्मजोति, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, बनारस-ब्रांच।

धर्म-दूत

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्स

विषय-सूची

मनुष्य अपना स्वामी (ईश्वर) आप ही है, दूसरा कौन स्वामी हो सकता है? अपने इन्द्रियों को बस में कर लेने से दुर्लभ स्वामित्व को पाता है।

—भगवान् बुद्ध

वर्ष ४ अंक ८-९ — अग्रहण-पौष पूर्णिमा बु० सं० २४८२ / वि० सं० १९९५ — वार्षिक मूल्य ।।)

बौद्ध-जगत्

कोरिया के ३१ मठों के प्रयत्न से Seoul में अप्रैल के महीने में एक बौद्ध कालेज की स्थापना होगी। विद्यालय-भवन निर्माण हो चुका है।

अफ़ग़ानिस्तान में बौद्ध-धर्म सम्बन्धी-लेख मिले हैं। हिन्दुस्तान और अफ़ग़ानिस्तान के बीच की पहाड़ियों में सम्राट् अशोक के एक लेख का भी पता लगा है। इन सब लेखों का सविस्तर वर्णन अभी तक नहीं मिला है।

Mr. A. Edirisinghe ने आनन्द कालेज में दिये गये व्याख्यान में कहा था कि बौद्ध धर्म कोई धर्म नहीं है। उन्होंने कहा कि बौद्ध धर्म वास्तव में भगवान् बुद्ध का अनुशासन मात्र है। धर्म शब्द की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा कि धर्म का सारांश किसी खास बन्धन में बाँधना है। इस कथनानुसार बौद्ध धर्म को एक तर्क तथा दर्शनशास्त्र का रूप दिया जा सकता है। इस प्रकार भगवान् बुद्ध का अनुशासन सर्वोत्कृष्ट तथा अलौकिक है।

निकट भविष्य में जापान में एक नये बौद्ध Association की स्थापना होनेवाली है। इसका नाम Japanese-German-Buddhist Association होगा और उसकी स्थापना टोकियो में होगी।

भिक्षु-धर्मस्कंध मालाबार के प्रथम बौद्ध भिक्षु हैं। दो वर्ष से अधिक हुए कि वे कालीकट, दक्षिणी भारतवर्ष तथा अन्य स्थानों में बौद्ध धर्म का प्रचार कर रहे हैं और उन्होंने ६०० मनुष्यों को बौद्धधर्म में दीक्षित किया है। आशा है कि आप इसी प्रकार संघ का कार्य करते हुए भगवान् बुद्ध के संदेश को फैलायेंगे।

दिसम्बर के २६, २७ और २८ ता० को राँची में बिहार-प्रान्तीय साहित्य-सम्मेलन का सोलहवाँ अधिवेशन 'महापण्डित' 'त्रिपिटकाचार्य्य' भिक्षु श्री राहुल सांकृत्यायनजी के सभापतित्व में बड़ी धूमधाम से मनाया गया। भिक्षु श्री जगदीश काश्यप एम० ए० तथा भिक्षु श्री नागार्जुन भी अधिवेशन में शामिल हुए थे। अधिवेशन में दिये गये भाषण के अतिरिक्त श्री राहुलजी ने भिन्न भिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न विषयों पर लगभग दस व्याख्यान दिये। आपकी मण्डली राँची के प्रसिद्ध समाज-सेवक बाबू श्री आदित्य-नारायण वकील के वासस्थान पर ठहरी हुई थी।

महाबोधि-विद्यालय का भवन इस मास में तैयार हो जायगा। अभी सिर्फ़ चौथाई भाग बन पाया है—जिसमें लगभग पन्द्रह हज़ार रुपये लगे हैं।

"धर्मदूत" के सम्पादक श्री धम्मानन्दजी एक आवश्यक कार्यवश लंका गये हैं। आशा है, वे एकाध मास में लौट आवेंगे।

सारनाथ के बर्मा बौद्ध-विहार के अध्यक्ष भिक्षु श्री कीत्तिमाजी बर्मा से सकुशल सारनाथ लौट आये।

——

धर्म-दूत

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवलपरिपुन्नं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग (विनय पिटक)

"भिक्षुओ! सर्व साधारण के हित के लिये, लोगों को सुख पहुँचाने के लिये, उन पर दया करने के लिये तथा देवताओं और मनुष्यों का उपकार करने के लिये घूमो। भिक्षुओ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्थाओं में कल्याणकारक धर्म का, उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य्य का प्रकाश करो।"

सम्पादक—धम्मानन्द

वर्ष ४	सारनाथ, दिसम्बर-जनवरी	बु० सं० २४८२ ई० सं० १९३८	अंक ८—९

"द्वेधा-वितक्क-सुत्तन्त" (मज्झिमनिकाय)

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिंडिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहाँ भगवान् ने 'भिक्षुओं को सम्बोधित किया—"भिक्षुओ!"

"भदन्त!" (कह) उन भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् ने कहा—भिक्षुओ! संबोध (=बुद्धत्व-प्राप्ति) से पूर्व भी, बोधि-सत्त्व होते वक्त मेरे (मन में) ऐसा होता था—'क्यों न दो टूक =(द्वेधा) वितर्क करते करते मैं विहरूँ।' सो भिक्षुओ! जो काम-वितर्क, व्यापाद-वितर्क, विहिंसा-वितर्क = (हिंसा के विषय में मन में तर्क वितर्क) इन (तीनों) को मैंने एक भाग में किया; और जो नैष्काम्य =(फल की इच्छा से रहित कर्म करना)—वितर्क, अव्यापाद-वितर्क, अविहिंसा-वितर्क इन (तीनों) को एक भाग में किया। भिक्षुओ! सो इस प्रकार प्रमाद-रहित, आतापी (=उद्योगी), प्रहितत्ता (=आत्मसंयमी) हो विहरते (भी) मुझे काम-वितर्क उत्पन्न होता था। सो मैं इस प्रकार जानता था—उत्पन्न हुआ यह मुझे काम-वितर्क, और यह आत्म व्याबाधा (=अपने को पीड़ित करने) के लिये है, पर व्याबाधा के लिये है, उभय (=आत्म-पर-) व्याबाधा के लिये है। (यह प्रज्ञा-निरोधक (=ज्ञान का नाशक), विघात-पक्षिक (=हानि के पक्ष का), निर्वाण को नहीं ले जानेवाला है। आत्म-व्याबाधा के लिये है—यह सोचते भिक्षुओ! (वह)

अस्त हो जाता था। पर व्याबाधा के लिये है। उभय व्याबाधा के लिये है। प्रज्ञा-निरोधक, विघात-पक्षिक, न-निर्वाण संवर्त्तनिक—यह सोचते भिक्षुओ! (वह) अस्त हो जाता था। सो मैं भिक्षुओ! बार-बार उत्पन्न होनेवाले काम-वितर्कों को छोड़ता ही था, हटाता ही था, अलग करता ही था।

"भिक्षुओ! सो इस प्रकार०१ व्यापाद-वितर्क उत्पन्न होता था।

"भिक्षुओ! सो इस प्रकार०१ विहिंसा-वितर्क०१।

"भिक्षुओ! भिक्षु जैसे-जैसे ही अधिकतर अनुवितर्क (=वितर्क) करता है, अनुविचार करता है; तो वह निष्काम (=कामना-रहित वितर्क) को छोड़ता है, और काम-वितर्क को बढ़ाता है; (और) उसका चित्त काम वितर्क की ओर झुकता है। यदि भिक्षुओ! भिक्षु व्यापाद-वितर्क०; तो वह अ-व्यापाद-वितर्क को छोड़ता है;०। यदि भिक्षुओ! भिक्षु विहिंसा=(हिंसा)-वितर्क को०, तो वह अ-विहिंसा=(अहिंसा)-वितर्क को छोड़ता है;०। जैसे भिक्षुओ! वर्षा के अन्तिम मास में शरद्-काल में (जब चारों ओर) फसल भरी रहती है (उस समय) ग्वाला (अपनी) गायों की रखवाली करता है, वह उन गायों को वहाँ-वहाँ से डण्डों से हाँकता है, मारता है, रोकता है, निवारता है। सो किस हेतु?—भिक्षुओ! वह ग्वाला उस (खेतों में चरने) के कारण वध, बन्धन, हानि या निन्दा (होने) को देखता है, ऐसे ही भिक्षुओ! मैं अकुशल-धर्मों=(बुराइयों) के दुष्परिणाम (आनृशंस्य) और परिशुद्धता का संरक्षण देखता था।

"भिक्षुओ! सो इस प्रकार प्रमाद-रहित०१ विहरते निष्कामता-वितर्क उत्पन्न होता था। सो मैं इस प्रकार जानता था—उत्पन्न हुआ यह मुझे निष्कामता-वितर्क; और वह न आत्म-व्याबाधा (=आत्म-पीड़ा) के लिये है, न पर व्याबाधा के लिये है न उभय=(आत्म-पर) व्याबाधा के लिये है। यह प्रज्ञावर्द्धक है अ-विघात=(अ हानि)-पक्षिक, और निर्वाण की ओर ले जानेवाला है। रात को भी भिक्षुओ! यदि मैं उसे अनुवितर्क करता, अनुविचार करता, (तो भी) उसके कारण भय नहीं देखता। दिन को भी०। रात-दिन को भी०। किन्तु बहुत देर तक अनुवितर्क; अनुविचार करते मेरी काया क्लान्त=(थकी) हो जाती, काया के क्लान्त होने पर चित्त अपहत (शिथिल) हो जाता, चित्त के अपहत होने पर चित्त समाधि से दूर (हट) जाता था। सो मैं भिक्षुओ! अपने भीतर (=अध्यात्म) ही चित्त को स्थापित करता था, बैठता था, एकाग्र करता था, समाहित करता था। सो किस हेतु? मेरा चित्त (कहीं अपहत न हो जाय) सो इस प्रकार प्रमाद-रहित०१ विहरते अ-व्यापाद-वितर्क उत्पन्न होता था०२। ०२ अ-विहिंसा-वितर्क होना उत्पन्न होता था ०३।

"भिक्षुओ! भिक्षु जैसे-जैसे ही अधिकतर अनुवितर्क करता है०४। यदि भिक्षुओ, भिक्षु निष्कामता-वितर्क का अधिकतर अनुवितर्क करता है०४, तो वह काम-वितर्क को छोड़ता है, और निष्कामता-वितर्क को बढ़ाता है; (और) उसका चित्त निष्कामता-वितर्क की ओर झुकता है। यदि भिक्षुओ! भिक्षु अ-व्यापाद-वितर्क०, तो वह व्यापाद-वितर्क को छोड़ता है, और अ-व्यापाद वितर्क को बढ़ाता है; और उसका चित्त अ-व्यापाद-वितर्क की ओर झुकता है। यदि भिक्षुओ! भिक्षु अ-विहिंसा वितर्क०,

तो वह विहिंसा-वितर्क को छोड़ता है, और अ-विहिंसा-वितर्क को बढ़ाता है; और उसका चित्त अ-विहिंसा-वितर्क की ओर झुकता है। जैसे भिक्षुओ! ग्रीष्म के अन्तिम मास में, जब सभी फसल (=सस्य) जमा कर गाँव में चली जाती हैं, ग्वाला गायों को रखता है, वृक्ष के नीचे या चौड़े में रहकर उन्हें केवल याद रखना होता है— यह गायें हैं; ऐसे ही भिक्षुओ! याद रखना (मात्र) होता था—'यह धर्म है'। भिक्षुओ! मैंने न दबनेवाला वीर्य=(उद्योग) आरम्भ कर रक्खा था, न भूलनेवाली स्मृति (मेरे) सम्मुख थी, शरीर (मेरा) अचंचल, शान्त था, चित्त समाहित=एकाग्र था।

"सो मैं भिक्षुओ! कामों से विहरित०५ प्रथम ध्यान को प्राप्त हो विहरने लगा ०५। द्वितीय ध्यान को०५। तृतीय ध्यान को ०५ ०५ चतुर्थ ध्यान को ०५।०५ (=पूर्व-निवासाऽनुस्मृति) ५।०५ प्राणियों के च्युति-उत्पाद के ज्ञान के लिये ०५।०५ आश्रवों के क्षय के ज्ञान के लिये ०५। "जैसे भिक्षुओ! (किसी) महावन में गहरा महान् जलाशय (=पल्लव) हो, (और) उसका आश्रम के महान् मृगों का समूह विहार करता हो। कोई पुरुष उस (मृग-समूह) का अनर्थ-आकांक्षी अहित-आकांक्षी=अ-योग-क्षेम-आकांक्षी उत्पन्न होवे। वह उस (मृग-समूह) के क्षेम (=सुरक्षित), कल्याणकारक, प्रीतिपूर्वक, गन्तव्य मार्ग को बन्द कर दे, और अकेले चलने लायक़ (=एक चर) कुमार्ग को खोल दे, और एक-चारिका=(जाल) रख दे। इस प्रकार वह महान् मृगसमूह दूसरे समय में विपत्ति में तथा क्षीणता को प्राप्त होवे। और भिक्षुओ! उस महान् मृगसमूह का कोई पुरुष हिताकांक्षी=योग-क्षेमकांक्षी उत्पन्न होवे। वह उस (मृग-समूह) के क्षेम० मार्ग को खोल दे, एक चर कुमार्ग को बन्द कर दे और एक चारिका=(जाल) का नाश कर दे। इस प्रकार वह महान् मृगसमूह दूसरे समय वृद्धि=विरूढ़ि (और) विपुलता को प्राप्त होवे।

"भिक्षुओ! अर्थ के समझाने=(विज्ञापन) के लिये मैंने उपमा (दृष्टान्त) कही। यहाँ यह अर्थ है। भिक्षुओ! 'गहरा महान् जलाशय' यह कामों (=कामनाओं, भोगों) का नाम है। 'महान् मृगसमूह' यह प्राणियों का नाम है। अनर्थाकांक्षी, अहिताकांक्षी, अयोग-क्षेमाकांक्षी पुरुष यह मार=बुराइयाँ (=पाप्मा) का नाम है। कुमार्ग यह आठ प्रकार के मिथ्या मार्ग हैं; जैसे (१) मिथ्या दृष्टि (=झूठी धारणा), (२) मिथ्या संकल्प, (३) मिथ्या वचन, (४) मिथ्या कर्मान्त (=कायिक कर्म), (५) मिथ्या आजीव(=जीविका), (६) मिथ्या व्यायाम(=कोशिश), (७) मिथ्या स्मृति, (८) मिथ्या समाधि। 'एकचर', भिक्षुओ! यह नन्दी=राग का नाम है। 'एकचारिका' भिक्षुओ! यह अविद्या का नाम है। भिक्षुओ! अर्थाकांक्षी, हिताकांक्षी, योग-क्षेमाकांक्षी पुरुष—यह तथागत अर्हत् सम्यक संबुद्ध का नाम है। क्षेम स्वस्तिक०, प्रीति-गमनीय मार्ग, यह आर्य-अष्टांगिक-मार्ग का नाम है, जैसे कि— (१) सम्यक् दृष्टि, (२) सम्यक् संकल्प, (३) सम्यग् वचन, (४) सम्यक् कर्मान्त, (५) सम्यगाजीव, (६) सम्यग् व्यायाम, (७) सम्यक् स्मृति, (८) सम्यक् समाधि। इस प्रकार भिक्षुओ! मैंने क्षेम=स्वस्तिक, प्रीति-गमनीय मार्ग को खोल दिया; दोनों ओर से एक-चर कुमार्ग को बन्द कर दिया, एक-चारिका (=अविद्या) का नाश कर दिया।

भिक्षुओ ! श्रावकों के हितैषी, अनुकम्पक, शास्ता को अनुकम्पा करके जो करना था, वह तुम्हारे लिये मैंने कर दिया। भिक्षुओ ! यह वृक्ष-मूल हैं, यह सूने घर हैं, ध्यानरत होओ। भिक्षुओ, मत प्रमाद करो, मत पीछे अफ़सोस करनेवाले बनना— यह तुम्हारे लिये हमारा अनुशासन है१ ।"

भगवान् ने यह कहा, सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओं ने भगवान् के भाषण का अनुमोदन किया।

चीन देश में भारतीय सभ्यता

(लेखक—डाक्टर प्रबोध बागची)

[डाक्टर प्रबोध बागची कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्राच्यतत्त्व के अध्यापक हैं। वे चीनी भाषा के धुरन्धर तथा विश्वविख्यात ज्ञाता हैं। अध्यापक सिलव्यां लेवि के अधीन रहकर उन्होंने वर्षों तक चीनी, संस्कृत तथा तिब्बती का अध्ययन किया है।]

प्राचीन काल में चीन के साथ भारतवर्ष का बड़ा निकट संबंध था, इस बात को नये सिरे से बताने की जरूरत नहीं, किन्तु उस संबंध का ठीक-ठीक इतिहास अभी तक लिखा नहीं गया है। वह इतिहास भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास में एक महत्त्व रखता है, इसलिए संक्षिप्त रूप से उसका हरेक को ज्ञान होना चाहिए क्योंकि इतिहास जाति के पुनर्निर्माण में छिन्न योगसूत्र को ग्रन्थित करने के मामले में बड़ी सहायता करता है; इसे कोई इन्कार नहीं कर सकता।

बाहरी दुनिया के सामने जिस भूखंड को हम चीन नाम से याद करते हैं उसके "चीन" नाम से प्रसिद्ध होने का कारण भारतवर्ष ही है। चीनी लोग अपने देश को दूसरे ही नाम से याद करते हैं और पहले भी करते थे। ईसा के ३०० साल पहिले चीन देश में जो राजवंश राज्य करता था उसका नाम "चीन" था और चीनियों की प्राचीन प्रथा के अनुसार उस वंश के राज्य-काल में देश का नाम चीन रक्खा गया। इसके कुछ ही दिन बाद राजवंश बदल जाने से चीनियों ने देश का नाम बदल दिया, किन्तु भारतीयों ने उसी नाम को जारी रक्खा और उसी नाम से उसका प्रचार किया। उस युग के ग्रीक साहित्य में इसलिए चीन को हम सिनाई (Sinae) थिनाई (Thinae) नाम से देखते हैं।

चीन देश में लोकतन्त्र स्थापित होने के पहिले उस देश की शिक्षित मण्डली को "मान्दारिन" कहा जाता था, और राजधानी पेकिंग के साथ ही बोलचाल की भाषा का एकमात्र नाम "मान्दारिन" था। यह "मान्दारिन" शब्द संस्कृत के मन्त्रिण शब्द का परिवर्तित रूप है। इस नाम का पहिले पहल प्रचार पोर्तुगीज मल्लाह तथा बनियों के द्वारा हुआ।

चीन के साथ भारतवर्ष के संयोग का इतिहास चीनी साहित्य से ही निकालना पड़ता है, भारतीय साहित्य में तो उसका करीब करीब कोई उल्लेख ही नहीं है। हाँ,

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में "चीनसी" "चीनपट्ट" आदि का उल्लेख है, और महाभारत में भी चीनियों का उल्लेख है किन्तु इन ग्रन्थों की रचना का समय अभी ठीक ठीक निर्धारित नहीं हुआ।

प्राचीन चीनी साहित्य में यह इतिहास सिलसिलेवार ढंग से मिलता है। यह बात सच है कि उस इतिहास में दो एक मनगढ़न्त बातें भी शामिल हैं। बात यह है कि अशोक मौर्य के समय १७ बौद्ध भिक्षु चीन में गये। अपरिचित विदेशी होने के कारण ये भिक्षु पहले क़ैद कर लिये गये, फिर छोड़ दिये गये। एक किंवदन्ती यह है कि ईसा के दो सौ वर्ष पहिले चीन के एक सेनापति युद्ध से लौटते समय बुद्ध की एक सोने की मूर्ति ले आये, किन्तु यह किंवदन्ती ग़लत है ऐसा चीनी इतिहासज्ञों ने भी माना है।

चीनियों के साथ हूण लोगों का बहुत दिनों से झगड़ा चल रहा था। हूणों ने चीन के सारे उत्तर तथा उत्तर-पश्चिम सीमान्त पर अधिकार कर चीनियों को तङ्ग कर रक्खा था। इन हूणों के आक्रमणों को रोकने के लिए सुप्रसिद्ध चीनी दीवार बनी, किन्तु इसमें भी हूण बाज़ नहीं आये। ईसा से पूर्व दूसरी सदी के तृतीय पाद में चीन के सम्राट् समझ गये कि मध्य एशिया की विभिन्न जातियों के साथ मित्रता स्थापित होने पर ही दोनों तरफ़ से हूणों पर दबाव डालना संभव होगा। मध्य एशिया के खोतान काशगर तथा समरकन्द के इलाक़े में शक तथा तुखार जाति रहती थी। इसलिए ईसा पूर्व १३६ सन् में चीनी सम्राट् ने चाँकियेन को अपना दूत बनाकर इन सब जातियों के पास भेजा। चाँकियेन सरहद पार करते ही हूणों के हाथों पकड़े गये, और दस साल क़ैद रहने के बाद तुखार देश में पहुँचे। इस जाति की राजधानी उन दिनों पामीर के उस पार प्राचीन वक्षु या आमू दरिया के किनारे थी। चाँकियेन ने शक और तुखारों के साथ मित्रता तो कर ली, किन्तु वे हूणों के साथ लड़ने पर राज़ी नहीं हुए।

चाँकियेन ने तुखार देश की राजधानी में चीन देश का माल देखा और लोगों से सुना कि यह माल चीन देश के दक्षिण-पश्चिम प्रांत से भारतवर्ष के जरिये लाया गया है। चाँकियेन ने स्वदेश में लौटकर चीन-सम्राट् को बताया कि भारतवर्ष के साथ सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए। भारतवर्ष में पहुँचने के रास्ते दो हैं, एक मध्य-एशिया से पामीर और हिन्दुकुश पार कर, और दूसरा चीन देश के दक्षिण-पश्चिम प्रांत यून्नन होकर।

चाँकियेन की इस रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि चीन साम्राज्य के यून्नन प्रदेश के साथ भारतवर्ष का बहुत पहिले से ही सम्बन्ध स्थापित हुआ था। चाँकियेन के ज़माने में अर्थात् ईसापूर्व दूसरी सदी के तृतीय पाद के पूर्व ही यह सम्बन्ध स्थापित हुआ था। इस रास्ते का उल्लेख प्राचीन पुस्तकों में मिलता है, किन्तु उसका विस्तृत वर्णन बाद के चीन साहित्य में है। इस रास्ते का आरम्भ यून्नन प्रदेश की राजधानी यून्नन-फू शहर से है। और पहाड़ी देश के बीच से होते हुए वर्त्तमान शान राज्य होकर बर्मा के उत्तर इलाके में अन्त होता था। बर्मा के इस इलाके से भारत में प्रवेश करने के दो तरीके थे, एक आसाम के उत्तर पूर्व से, दूसरा आराकान और मनीपुर होते हुए। दोनों रास्ते जाकर मगध की राजधानी पाटलिपुत्र में ख़तम होते थे।

ईसा पूर्व पहिली सदी में चीनियों ने हूणों को विध्वस्त कर दिया और इस प्रकार मध्य एशिया के जरिये से जो हिन्दुस्तान का रास्ता था उस पर उनका कब्जा हो गया, और इस प्रकार उस रास्ते से वे आने-जाने लगे। भारत का उत्तर-पश्चिम हिस्सा उस समय कुशानों के हाथ लग चुका था। मध्य एशिया का रास्ता बेख़तरा होते ही कुशानों के राजा ने चीन में दूत भेजा, और उनके साथ उपहार के तौर पर कुछ बौद्ध शास्त्रों की पोथी भेजी। कुशान राजाओं ने इसके पहिले ही बौद्ध धर्म अवलम्बन कर लिया था। ईसा पूर्व २ सन् में कुशानों का दूत चीन पहुँचा। इसके कुछ ही पहले बौद्ध प्रचारकों ने भारतवर्ष की पूर्वी सरहद की ओर से चीन के यून्नन प्रदेश में बौद्ध धर्म प्रचार करने की चेष्टा की। इसके फलस्वरूप एक चीनी विद्वान् ने बौद्ध धर्म के समर्थन में जो पुस्तक लिखी थी वह अब प्रकाशित हो चुकी थी। इस पंडित का नाम म्युतूज़ु था। म्युतूज़ु ने युक्ति-तर्कों से साबित किया था कि चीनियों के प्राचीन धर्म से बौद्ध धर्म बहुत उन्नत है। बहुत संभव है कि इसी चीनी विद्वान् की ही वजह से बहुत से चीनी राजपुरुषों ने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया।

ईसाई सन् की पहली सदी के तीसरे पाद में स्वयं चीन-सम्राट् बौद्ध धर्म की ओर आकृष्ट हुए। उसी समय कुशानों की राजधानी से काश्यप-मातङ्ग तथा धर्मरत्न नामक दो भारतीय भिक्षु चीन देश की राजधानी में अपने पोथीपत्रा सहित पहुँचे। किंवदन्ती है कि एक सफेद घोड़े की पीठ पर वे बौद्ध शास्त्र ले गये। चीन सम्राट् ने इनको सम्मान के साथ अपनी राजधानी में स्थान दिया, और ६८ सन् में चीन में पहिला बौद्ध मन्दिर स्थापित हुआ। इस मन्दिर का नाम पड़ा "पो मा सो" याने श्वेताश्वविहार। यह विहार बौद्ध-चीन में सबसे प्रधान प्रतिष्ठान था। काश्यप मातङ्ग तथा धर्मरत्न जो पोथी-पत्रा लेकर गये थे उनका चीनी में अनुवाद हुआ। इनमें से एक का अनुवाद अभी चीनी साहित्य में सुरक्षित है। इस पुस्तक का नाम है 'द्विचत्वारिंश सूत्र'। इस पुस्तक में बौद्धधर्म के मूलसूत्र तथा संघ के चलाने के नियम हैं। चीन देश के साथ भारत का यह सम्बन्ध विदेशी बौद्धों के प्रचार से और भी दृढ़ हुआ। काश्यप मातङ्ग तथा धर्मरत्न भारतीय होने पर भी कुशानों की राजधानी से चीन गये थे, और बहुत सम्भव है कि वे बौद्ध कुशानों के द्वारा अनुरुद्ध होकर ही गये।

इनके बाद जिस बौद्ध भिक्षु ने जाकर चीन देश में बौद्धधर्म सुदृढ़ किया, वे एक पारसी भिक्षु थे। चीनी ग्रंथों में उनका नाम "आन-शे-काव" आया है। शे-काव का मतलब है लोकोत्तम। आन प्राचीन उच्चारण-पद्धति के नियमानुसार "आरसाक" शब्द का खंडितांश है। इससे मालूम होता है कि भिक्षु लोकोत्तम आरिसिकीदीय राजवंश के राजकुमार थे। प्राचीन साहित्य से भी यह अनुमान साबित होता है। वे बहुत कम उम्र में ही बौद्ध हुए और नाना देशों में घूमते हुए १४८ सन् में चीन देश की राजधानी में पहुँचे। उनके सम्बन्ध में इतना मालूम होता है कि वे संस्कृत तथा बौद्ध शास्त्रों के विद्वान् थे। वे १६८ सन् तक जीवित थे और इस बीस साल में उन्होंने चीन में बौद्ध शास्त्रों का प्रचार किया था। इस दौरान में उन्होंने कोई १७६ बौद्ध ग्रन्थों का अनुवाद कर डाला। इनमें ५५ अब भी मिलते हैं। उनमें से कुछ के नाम यह हैं—

(१) महानपानध्यान सूत्र
(२) मार्गभूमि सूत्र
(३) सामन्त धर्मार्थ सूत्र

ये सूत्र अधिकतर बौद्ध पिटकों के अन्तर्गत हैं। किन्तु संस्कृत भाषा में जो मूल सूत्रपिटक थे वे अब लुप्त हो गये। भिक्षु लोकोत्तम तथा अन्यान्य अनुवादकों के अनुवाद से ही इन लुप्त सूत्रों का पता लगता है और उन्हीं अनुवादों की सहायता से उन ग्रन्थों का उद्धार हो सकता है। जो कुछ भी हो, इसी पारसी बौद्ध भिक्षु लोकोत्तम की बदौलत चीन में बौद्ध धर्म का पाया मज़बूत हुआ और चीन में कुछ बौद्ध शास्त्र हो गये।

इसके थोड़े ही दिन बाद लोकक्षेम नाम के एक तुखारदेशीय भिक्षु चीन में गये। आक्सस नदी पामीर से निकलकर अपनी शाखाओं से जिस देश को सींचती है उसका नाम तुखार है। संस्कृत में इस देश का नाम तुखार है। क्योंकि ष का ठीक उच्चारण ख है। कुशान इन्हीं तुखारों के अन्तर्गत थे। ईसा पूर्व पहिली सदी में ही तुखारों के देश में बौद्ध धर्म का प्रवेश हो चुका था और इसकी दूसरी सदी में वहाँ का मुख्य धर्म बौद्ध धर्म हो चुका था। लोकक्षेम ने भी २३ पुस्तकों का चीनी में अनुवाद किया। इस काम में उन्हें एक भारतीय भिक्षु ने मदद दी। इनका नाम चीनी ग्रन्थों में "फो शो" आता है, किन्तु न तो इनके असली भारतीय नाम का पता लगता है, न यह पता लगता है कि वे कब चीन गये; किन्तु उन्होंने लोकक्षेम को सहायता दी यह सिद्ध है। फो-शो शायद १६८ सन् से १८९ सन् तक चीन में मौजूद रहे।

चीन में इस ज़माने में जो बौद्ध भिक्षु प्रचार के लिये गये थे उनमें एक पारसी, एक तुखार तथा दो सुगदीय पंडित थे। इस जमाने में बौद्ध धर्म ईरान में अज्ञात न था, "आसहिउआन" नामक एक बौद्ध पंडित १८१ सन् में चीन पहुँचे। ये गृहस्थ थे। चीन में रहते समय इन्होंने दो बौद्ध ग्रन्थों का अनुवाद चीनी में किया, एक तो 'उग्र परिपृच्छा' दूसरा 'द्वादशविधानसूत्र'। ये ग्रन्थ अब भी प्राप्त हैं।

सुगद प्राचीन ईरान का पश्चिमी हिस्सा है। आजकल इसे समरक़न्द कहते हैं। इस देश में बौद्ध धर्म पहिली तथा दूसरी सदी में फैला। इसका प्रमाण यह है कि मध्य एशिया के सब पोथी पत्रे वहीं मिले हैं। सुगदीय जाति ने व्यापार के बहाने कई जगह अपना उपनिवेश स्थापित किया था और इस प्रकार उनके साथ साथ बौद्ध धर्म फैला था।

चीनी साहित्य में सुगद का नाम "ख्याँ" रहा, इसलिए इस देश के भिक्षुओं के नामों के साथ "ख्याँ" जोड़ दिया गया है। जो दो सुगदीय भिक्षु चीन में गये थे उनका नाम है ख्याँ किउ और ख्याँ मोङ सियाँ। ख्याँ किउ तथा ख्याँ मोङसियाँ क्रमशः १८७ और १९९ सन् में चीन पहुँचे। उन्होंने अपने जीवन का अन्तिम हिस्सा चीन में धर्मप्रचार तथा बौद्ध शास्त्रों के प्रचार में व्यतीत किया। ख्याँ मोङ सियाँ द्वारा अनुवादित चार ग्रन्थ अब भी मिलते हैं।

सन् ६८ से २२० तक चीन में जिस राजवंश का राज्य रहा उसका नाम हान (द्वितीय शाखा) था। हान वंश की पहिली शाखा के समय चाँ क्यिेन मध्य एशिया भेजे गये थे। इस वंश की द्वितीय शाखा के राज्यकाल के प्रारम्भ से ही भारतीय बौद्ध धर्म

का चीन में प्रचार हुआ, और पारसी, तुखार तथा सुगदीय पण्डितों की चेष्टा से उसका आसन सुप्रतिष्ठित हो गया। चीनी भाषा में जो असंख्य बौद्ध पुस्तकों का अनुवाद हम देखते हैं उसमें इन्हीं विदेशी बौद्धों का हाथ है। वर्तमान युग में भारतवर्ष एशिया के देशों के सहयोग से वंचित हुआ है; किन्तु एक ज़माना था जब भारत की बत्ती से अपनी बत्ती जलाकर ये देश दूसरे देशों में उसकी छटा फैलाने दौड़ते थे।

("अभ्युदय" से उद्धृत)

चतुरार्य सत्य

(लेखक—धर्मानन्द लङ्का)

चार बातें भगवान् ने सिखलाई हैं। दुःख, दुःख का कारण, दुःख-निरोध, दुःख निरोध का उपाय। भगवान् द्वारा बताई गई समस्त शिक्षाएँ इन्हीं चार सत्यों के अन्तर्गत हैं।

चतुरार्य सत्य के द्वारा हम संसार का यथार्थ स्वभाव, अर्थात् जीवन का लक्षण, उसकी मर्यादा एवं उसका ध्येय समझ सकते हैं।

संसार में दो प्रकार की वस्तुएँ हैं। एक वे जो विद्यमान हैं और दूसरी वे जो जीवित हैं। विद्यमान वह हैं, जो जीवित रहते हुए भी यह नहीं जानते कि "जीवन क्यों है" ? जीवित वही है जिसने इस प्रश्न को हल किया है, अथवा जो हल करने का प्रयत्न करता है।

किसी व्यक्ति का व्यक्तिगत जन्म जीवन-धारा का जन्म नहीं। वह केवल जीवन का एक लक्षण है। वह उन सामग्रियों में से है जिनके आधार से जीवन-धारा बनी रहती है।

जो व्यक्ति जन्म को जीवन का प्रारम्भ, और मृत्यु को उसका अन्त समझता है, उसके लिए यह प्रश्न ही नहीं होता है कि "जीवन क्यों" ? वह जीवन के अङ्ग को उसका अन्त समझता है अतएव वह यथार्थ में जीवित नहीं।

मनुष्य प्रतिक्षण कुछ न कुछ सीखता रहता है—ज्ञान का संचय करता रहता है। क्यों ? यह समझने के लिए कि "जीवन क्यों" ? इससे सिद्ध होता है कि प्रत्येक प्राणी विद्यमान या जीवित, इस प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ता हुआ विचरता है।

विशेषता यह है कि कुछ प्राणी जानते हुए पथ पर चलते हैं, और कुछ अनजान। जो जानते हुए चलते हैं वे जीवित अथवा जाग्रत हैं, और जो अनजान से चलते हैं वे निद्रित हैं।

परन्तु निद्रित व्यक्ति ही जाग्रत हो जाते हैं, अर्थात् विद्यमान वस्तु को जीवित होने का सौभाग्य प्राप्त होता है। सांसारिक निद्रा में निद्रित पुरुष दुःख की प्रेरणा से जाग्रत हो जाते हैं।

हमें जगानेवाला देवदूत, हमें कर्मण्य बनानेवाली शक्ति और हमें धैर्य एवं आशा दिलानेवाला अधिष्ठाता एकमात्र दुःख है।

"Illness and trilucatiaus being the teachers of piety and not to be avoided. Enemies and misfortune being the menance of inclining are to a religious career are not to be avoided." इससे भी सिद्ध होता है कि दुःख की भी कुछ आवश्यकता है, जिसकी पूर्त्ति होने से वह अनावश्यक हो जाता है। दुःख ही से, अर्थात् उसके अनुभव से, उसके ज्ञान से ही उसे दूर करना है; इसलिए भगवान् ने कहा है "दुःख-भोगेन खोभिक्खवे सुखं अधिगन्तव्वं"—भिक्षुओ, दुःख के अनुभव से ही सुख की प्राप्ति करनी चाहिए।

"हे भद्रे, तुम मेरी सहायता से ही—मेरे सहयोग से ही—मुझसे मुक्त हो जाओ। मुझसे डरता है, उसे मैं छोड़ता नहीं; जो मुझे आलिंगन करता है उसे मैं बाध्य होकर छोड़ देता हूँ या उसी से मैं छोड़ दिया जाता हूँ। मैं जीवन का लक्षण हूँ; पर लक्ष्य नहीं; साधन हूँ पर साध्य नहीं; पथ हूँ, पर पा[illegible] नहीं।" यही दुःख का सन्देश है और यही विश्व का संवाद है।

संसार में प्रत्येक व्यक्ति दुःख से परिचित है। ऐसा कोई भी नहीं जिसने अपने जीवन में कभी कठिनाइयों का सामना न किया हो। वास्तव में दुःख हमारे जीवन का ही अङ्ग है।

"कास्ता दृशो यासु न सन्ति दोषाः कास्ता दिशो यासु न दुःखदाहः।
कास्ताः प्रजा यासु न भङ्गुरत्वम् कास्ताः क्रिया यासु न नाम माया" ॥

कौन सी ऐसी दृष्टि है जिसमें दोष नहीं? कौन सी ऐसी दिशा है जिसमें दुःख की जलन नहीं? कौन सी ऐसी उत्पन्न वस्तु है जो नाशवान न हो? कौन सी ऐसी क्रिया है जो कपट से रहित हो?

"जो कुछ इस संसार में दिखलाई पड़ता है वह सब स्वप्न के समान अस्थिर है; संसार के सारे पदार्थ तरङ्ग के समान पूर्व-भाव को त्यागकर दूसरे भाव को ग्रहण करते हैं, अर्थात् अनित्य हैं। हवा में रक्खे हुए दीप की शिखा के समान यह जीवन चञ्चल है, अस्थिर है। तीनों लोकों के पदार्थों की शोभा बिजली की चमक के समान क्षणिक है। एक रूप में स्थिर कोई भी पदार्थ नहीं, वही मनुष्य जो पहले किसी और रूप में था, कुछ दिनों में ही दूसरे रूप में हो जाता है (अर्थात् अनात्म है)। जब अपने शरीर में ही एक-रूपता नहीं है, बाह्य पदार्थों का क्या विश्वास है? जैसे नट क्षण-क्षण में वेष बदलकर अपनी लीलाएँ दिखाता है, यह मन भी क्षण में आनन्दित होता है, क्षण में शोकयुक्त हो जाता है और क्षण में शान्त हो जाता है।" (योगवाशिष्ठ और उसके सिद्धान्त)

परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि जगत् दुःखमय है; और सुख की सम्भावना ही नहीं। संसार में सुख का भी स्थान अवश्य है। सुख की उपस्थिति में ही दुःख विद्यमान है। अन्तर यही है कि सांसारिक जीवन अधिक दुःखमय है। आजन्म मृत्यु तक हम

अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करते रहते हैं। तथापि साधारणतः मनुष्य सुख की ओर ही झुका हुआ रहता है, साथ ही साथ दुःख से घृणा भी करता है।

परन्तु सुख का रहस्य यह है कि हम जितना ही अधिक उसके पीछे पड़ जाते हैं, उतना ही अधिक वह हमसे दूर हो जाता है। अतः वह ढूँढ़ने से नहीं बल्कि छोड़ने से ही मिलता है।

मनुष्य सुखी रहते हुए भी जब किसी दुःखित को देखते हैं तो सहसा काँप उठते हैं। दूसरों के दुःख तक सहने की हिम्मत उनमें नहीं है।

'ये केचित् दुःखिता लोके स वै आत्मसुखेच्छया।
ये केचित् सुखिता लोके स वै अन्यसुखेच्छया॥"

जो दुखी है वह सुख चाहता है। जो स्वयं सुखी है वह दूसरों का सुख चाहता है। सुखी दुखी दोनों के लक्ष्य एक ही हैं।

दुःख को सम्यक प्रकार से जान लेना और उससे मुक्त होने का प्रयत्न करना अर्थात् दुख और दुख-निरोध ही बुद्ध-धर्म का सारांश है।

"भिक्षुओ! दुःख क्या है? शोक[illegible]ना, रोना-पीटना, चिन्तित होना और परेशान होना दुःख है। अप्रिय वस्तु से सहयोग एवं प्रिय वस्तु से वियोग दुःख है। थोड़े में कहना हो तो पाँच उपादानस्कन्ध ही दुःखमय हैं"। स्वभावतः प्रत्येक वस्तु का हेतु होता है। संसार हेतु फल का ही उदाहरण है। हेतु के बिना फल अथवा फल के बिना हेतु सम्भव नहीं। इस सांसारिक दुःख का भी एक हेतु है।

"यायं तण्हा पोनोभविका नन्दिराग सहगता तत्र तत्राभिनन्दिनी" यह जो पुनर्जन्म देनेवाली तृष्णा है, जिसका स्वभाव आनन्द लेना है वही दुःख का कारण है। इसके कारण ही प्राणिमात्र संसार में भटकते रहते हैं।

"भिक्षुओ यह पुनः-पुनः जन्म लेने का कारण है, यह जो लोभ तथा राग से युक्त है; यह जो यत्र-तत्र आनन्द लेती है, जैसे काम-तृष्णा, भव-तृष्णा, विभव-तृष्णा, यही दुःख-समुदय के बारे में आर्य सत्य है।

हेतु के रहते हुए फल का नाश नहीं हो सकता है। दुःख के नाश के लिए तृष्णा का नाश करना चाहिए।

"यो तस्सायेव तण्हायं असेस विरागनिरोधो यागो, पटिनिस्सग्गे, मुत्ति अनालयो" उसी तृष्णा से सम्पूर्ण वैराग्य, उसका निरोध, त्याग, परित्याग, उससे मुक्ति, अनासक्ति यही दुःख-निरोध सम्बन्धी आर्य सत्य है।"

संसार में जो प्रियकर है, जहाँ मज़ा है, वहीं यह अपना घर बना लेती है।

संसार में प्रियकर क्या है? किसमें मज़ा है? संसार में चक्षु प्रियकर है। चक्षु में मज़ा है। रूप प्रियकर है, रूप में मज़ा है। इस प्रकार पाँचों इन्द्रियों में और उनके विषयों में मज़ा है। वहीं यह तृष्णा अपना घर बना लेती है।

इस तृष्णा से मुक्त होना दुःख से मुक्त होना है। सम्यक् दृष्टि, सम्यक् सङ्कल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति, सम्यक् समाधि, यही दुःख-निरोध का उपाय अर्थात् आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग है।

आनन्द का शुभ संवाद

विवाह-सम्बन्धी उत्सव के समाप्त होने पर सुभूति ने अपने अतिथियों को भोजन के लिये निमन्त्रित किया। उस समय वहाँ आयुष्मान् अनुरुद्ध को देखकर सुभूति ने उन्हें अपने पास ही बिठाया। आमोद-प्रमोद के साथ लोगों ने भोजन किया। धीरे धीरे सन्ध्या हो गई। रात्रि का आगमन भी हुआ। चारों ओर चाँदनी छिटक रही थी; शीतल, मन्द और सुगन्ध पवन चल रहा था। लोग मैदान में एक वृक्ष के नीचे बैठकर आलाप संलाप में निमग्न हो गये। सुभूति ने अनुरुद्ध को सम्बोधित करके कहा—

"भन्ते अनुरुद्ध ! मैं शाक्यमुनि भगवान् बुद्ध के प्रति बड़ी श्रद्धा रखता हूँ। लेकिन मुझे जान पड़ता है कि उनका धर्म हम लोगों के योग्य नहीं है। वह दर्शन केवल उन लोगों के लिये है जो कि जीवन की विपत्तियों से ग्रस्त हैं; वह तो व्यथित, पीड़ित तथा दुःखित हृदयों को शरण देनेवाला है; लेकिन सुखी जीवों के लिये उसकी कोई आवश्यकता नहीं है। जीवन-संग्राम में घायल व्यक्तियों के लिये वह संजीवनी बूटी है, लेकिन उसके विजेताओं के लिये वह विष तुल्य है।"

अनुरुद्ध ने कहा—"हाँ, अवश्य भगवान् बुद्ध का संदेश केवल उन लोगों के लिये है जो कि जीवन की अनेक आपत्तियों तथा विपत्तियों से पीड़ित हैं। वह पीड़ितों तथा असहायों के लिये एक शरण है; वह उन्हें सुख तथा शान्ति प्रदान करता है। जो लोग आमोद में लीन हैं, उनके लिये किसी प्रकार की सांत्वना, सहायता अथवा औषधि की आवश्यकता नहीं। लेकिन संसार में सुखी कौन है ? क्या आप लोगों में कोई ऐसा है जिसने कि जन्म, जरा, मृत्यु तथा दुःख से पार पाया है ? यदि सचमुच कोई ऐसा हो तो वह विजेता है, उसे मुक्ति की आवश्यकता नहीं।

मैं यहाँ चारों ओर आनन्द तथा विनोद की सामग्री देखता हूँ। लेकिन क्या यह सुख सच्चा तथा स्थायी है ? क्या आपदाओं तथा मृत्यु के समय आपका चित्त स्थिर रहेगा ? जिन्होंने अमरत्व अर्थात् निर्वाण प्राप्त किया है, वे ही यथार्थ में सुखी हैं। ज्यों ही सांसारिक कामनाओं तथा नित्य आत्मा के अस्तित्व की मिथ्या-धारणा का नाश हुआ, त्यों ही यथार्थ सुख उदय हो जाता है। सांसारिक सुख केवल अस्थिर ही नहीं, प्रत्युत अति भयावह है। सभी वस्तुएँ परिवर्त्तनशील हैं और जहाँ इस परिवर्त्तनशील संसार से तृष्णा का दमन हो गया, वहाँ परम सुख विद्यमान है। धर्म के बाहर सत्य सुख नहीं मिल सकता। भगवान् बुद्ध के धर्म से इस सुख की प्राप्ति हो सकती है। जो लोग जन्म-मृत्यु के चक्र में पड़कर भी अपने को सुखी समझ बैठे हैं, भगवान् बुद्ध उनकी आँखों को खोलते हैं। काँटे को देखते ही मछली प्रसन्न हो जाती है। लेकिन काँटा जहाँ कंठ में धँसा, वह बेचारी अपार वेदना का अनुभव करने लगती है। प्रति क्षण आत्म-विनोद के लिये व्यग्र रहनेवाला सदा भयभीत रहता है। वह दूसरों के सुख-दुःख की भले ही उपेक्षा करे, लेकिन वह इस बात से कदापि अनभिज्ञ नहीं रह सकता कि सभी जीवधारियों का अन्त एक ही है। जो नाशवान् वस्तुओं से अलिप्त रहता है, वही यथार्थ में सुखी

है। वह मृत्यु से परे हो जाता है और शान्त तथा स्थिर रहता है। वह नित्य-आत्मा के भ्रम को छोड़कर अमरत्व अर्थात् निर्वाण को प्राप्त हो जाता है।

सुदत्त ने अपनी नववधू की ओर एकटक देखकर कहा—"मैं तो कभी गौतम का अनुयायी नहीं बनूँगा, क्योंकि पति को यह कदापि उचित नहीं कि वह निर्वाण की प्राप्ति के लिये अपनी पत्नी को छोड़ बैठे।"

आयुष्मान् अनुरुद्ध ने सुदत्त की बातों को सुनकर कहा—मेरा मित्र डरता है कि भगवान् का उपदेश उसे अपनी नववधू से कहीं अलग न कर दे। परन्तु कोई ऐसी बात नहीं है। गौतम ने तो समस्त संसार को अंधकारमय देखकर ही अपनी स्त्री तथा पुत्र को तिलाञ्जलि देकर गृह-परित्याग किया था। अमरत्व अर्थात् निर्वाण को स्वयं प्राप्त कर अब वे दूसरों के पथ-प्रदर्शक बने हैं। मैं भी उनका शिष्य हूँ और उन्हीं की तरह संसार का त्याग कर लोक-सेवा में लगा हुआ हूँ। मैंने इस धार्मिक जीवन को व्यतीत करते हुए तृष्णा का दमन किया है। यह सब आत्मोत्सर्ग लोक-हित के लिये है। हमारे जीवन का लक्ष्य 'अनात्मवाद' अर्थात् आत्मा का निषेध है।

"जब तक तृष्णा का दमन नहीं होता तब तक सांसारिक बन्धनों से दूर रहने मात्र से ही उनसे छुटकारा नहीं मिल सकता। संसार का त्याग कर संन्यास लेने पर भी यदि कोई सांसारिक सुख-भोग की इच्छा रखता है तो वह यथार्थ में उस जीवन का अधिकारी नहीं बन सकता। इसके विपरीत यदि किसी ने गार्हस्थ्य में रहते हुए भी इच्छाओं का दमन कर दिया तो वह उस परम शान्ति अर्थात् निर्वाण का भागी बन सकता है। अमृत-गवेषक को चाहिए कि सांसारिक कामनाओं का नाश कर अपना सारा पुरुषत्व सम्यक्ज्ञान के प्रतिलाभ में लगावे। लेकिन कदाचित् इसका तात्पर्य यह नहीं है कि जो गृहस्थ में रहता है वह अपना कर्तव्य-पालन न करे। हाँ, भगवान् ने भी कहा है—

(१) माता पिता उपट्ठानं, पुत्तदारस्स संगहो।
अनाकुला च कम्मन्ता, एतं मङ्गलमुत्तमं॥

(२) दानं च धम्मचरिया च, ञातकानं च सङ्गहो।
अनवज्जानि कम्मानि, एतं मङ्गलमुत्तमं॥

(३) तपो च ब्रह्मचरियञ्च, अरियसच्चान दस्सनं।
निब्बानसच्चिकिरिया च, एतं मङ्गलमुत्तमं॥

अर्थ—(१) माता-पिता की सेवा, पुत्र-दारा का पालन-पोषण तथा अव्याकुल और शान्तिपूर्ण कार्य करना—ये सब श्रेष्ठ मांगलिक कारण हैं।

(२) दान देना, धार्मिक जीवन व्यतीत करना, सम्बन्धियों की सहायता करना तथा अनवद्य कर्म करना—ये सब मांगलिक कारण हैं।

(३) तप करना, ब्रह्मचर्य का पालन करना, आर्य-सत्यों का दर्शन करना तथा निर्वाण का साक्षात् करना—ये सब मांगलिक कारण हैं।

(अनुवादक—भिक्षु धर्मरत्न)

आनन्द

(लेखक—श्रमणेर ज्ञानश्री)

बुद्ध के कोई खास परिचारक नहीं था। कभी एक कभी दूसरा शिष्य पात्र और चीवर लेकर उनके पीछे-पीछे जाता था। बुद्ध सबको समान रूप से प्यार करते थे। एक दिन जब बुद्ध अपने भिक्षुओं के साथ धर्म-सभा में बैठे हुए थे तब उन्होंने कहा, "भिक्षुओं, अब मैं वृद्ध हो गया हूँ। जब किसी भिक्षु को मैं इधर जाने को कहता हूँ तो वह उधर जाता है। दूसरा भिक्षु मेरे साथ भिक्षा से लौटकर मेरा पात्र और चीवर जमीन पर रख छोड़ता है। बताओ, तुममें से कौन नित्यप्रति मेरी सेवा कर सकता है।

यह सुनकर सब भिक्षु आनन्द से फूल गये। धर्म-सेनापति सारिपुत्र ने उठकर कहा, "भन्ते मैं आपकी सेवा करूँगा।" और मौद्गल्यायन महास्थविर ने भी उनके सेवक बनने की प्रार्थना की पर बुद्ध ने उन दोनों को एक तरफ हटा दिया; क्योंकि वे दोनों बुद्ध के प्रधान शिष्य थे।

एक भिक्षु ने कहा, "मैं भगवान् की सेवा करूँगा", दूसरे ने कहा, "मैं करूँगा", तीसरे ने कहा, "मैं करूँगा।" लेकिन आनन्द चुपचाप एक तरफ बैठे थे। एक ने-कहा—"आयुष्मान् आनन्द ! आप क्यों चुपचाप बैठे हैं ? आप बुद्ध की सेवा के लिए प्रार्थना कीजिए।" इस पर आनन्द ने जवाब दिया, "मैं क्यों पूछूँ ? इससे मेरा क्या लाभ ? वे स्वयं उससे पूछेंगे, जिसे वे चाहते हैं।"

बुद्ध ने कहा, "आनन्द किसी से दबता नहीं। यदि उसकी आन्तरिक इच्छा है तो वह मेरी सेवा कर सकता है।"

फिर भिक्षुओं ने कहा, "आयुष्मान् आनन्द, उठ जाइए; बुद्ध की सेवा के लिए प्रार्थना कीजिए।" इस बार आनन्द उठ खड़े हुए और उन्होंने नमस्कार कर कहा, "भगवान् यदि आप मेरी इन चार प्रार्थनाओं को स्वीकार करें तो मैं आपकी सेवा कर सकता हूँ। भगवान् मुझे सुन्दर चीवर, वस्तु और भिक्षा द्वारा प्राप्त स्वादिष्ट भोजन न दें; और मुझे किसी निमन्त्रण में अपने साथ न ले जायँ; क्योंकि लोग यह कह सकते हैं कि आनन्द केवल सुन्दर चीवर, वस्तु और स्वादिष्ट भोजन पाने के लिये ही बुद्ध की सेवा करता है। इसमें उसे कौन सी असुविधा है ?"

आनन्द ने बुद्ध से और चार बातों के लिए प्रार्थना की, "यदि मैं बाहर कहीं निमन्त्रित होऊँ तो भगवान् भी मेरे साथ चलें; अपने दर्शन के लिये आये हुए दर्शकों को आप स्वयं अपने पास ले आने को आज्ञा प्रदान करें; जो उपदेश भगवान् बाहर देते हैं, फिर वही उपदेश आप मुझे सुनायें; नहीं तो लोग कहेंगे कि भगवान् की सेवा से तुम्हें क्या लाभ ?"

"मान लीजिए कि मैं किसी स्थान पर निमन्त्रित किया गया; मुझसे कहा गया कि अपने साथ बुद्ध को भी ले आएँ, यदि भगवान् न जा सकें या आये हुए दर्शकों को दर्शन न दे सकें तो लोग मेरे ऊपर विश्वास नहीं रखेंगे। फिर वे कह सकते हैं कि बुद्ध मेरी बातों पर ध्यान नहीं देते; और फिर यदि भगवान् मुझे धर्म के गंभीर तत्त्वों को न समझा देंगे तो

लोग मुझे कहेंगे, "आयुष्मान् क्या कारण है, जो तुम छाया की तरह भगवान् का अनुसरण करते हुए भी उनकी बातों को नहीं जानते।"

बुद्ध ने आनन्द की इन आठ बातों को स्वीकार कर लिया।

उसी दिन से आनन्द बहुत तत्परता से बुद्ध की सेवा करने लगे। सुबह जब बुद्ध उठ जाते थे तो आनन्द उनके मुँह-हाथ धोने के लिये पानी और दातौन लाते थे; भोजन के समय उनके आसन ठीक कर रखते थे; मैले कपड़े धोकर ठीक स्थान पर रख देते थे; बुद्ध जहाँ जाते थे वहीं आनन्द भी उनके पात्र और चीवर लेकर जाते थे; और रात में जब बुद्ध सो जाते थे तब आनन्द एक लाठी और एक बत्ती लेकर उनके कमरे के बाहर घूमते थे; जब तक बुद्ध उनको जाने की आज्ञा न देते थे तब तक वे सोने को नहीं जाते थे।

एक समय जब भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिंडिक के मठ में विहार कर रहे थे, तब उन्होंने आनन्द को विशेषज्ञान, सावधानता, चलने की शक्ति, उपयोग और सेवा में संघ का प्रधान नियुक्त किया।

बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद भी आनन्द ने अर्हत् फल नहीं प्राप्त किया। वे हमेशा लोगों के साथ बातचीत में ही समय बिताते थे। एक दिन एक देवता ने आकर कहा, "भन्ते आनन्द, आप सम्यक् व्यायाम करें, व्यर्थ अपना समय नष्ट न करें।"

आनन्द ने सोचा, "कल सभा होनेवाली है। मेरे लिये यह उचित नहीं कि मैं शिष्य होकर बड़ों के साथ धर्मोपदेश करने को जाऊँ।" उसके बाद वे अपने शयनागार में चले गये और रात भर उन्होंने अपने को समाधिस्थ अवस्था में रखने का प्रयत्न किया; लेकिन असफल रहे। फिर वे जाकर अपने मंच के ऊपर बैठ गये। उनकी आँखें निद्रा का अनुभव कर रही थीं। उन्होंने ज्यों ही अपना सिर तकिये के ऊपर रखा और पैर ज़मीन के ऊपर उठाया उसी क्षण में उनकी तृष्णा का नाश हो गया और उन्होंने "पटिम्बिदा" सहित अर्हत् ज्ञान की प्राप्ति की। दूसरे दिन वे धर्म-सभा में गये।

मरते समय उन्होंने कहा, "मैंने परम श्रद्धा के साथ भगवान् बुद्ध की सेवा की है; मैंने तृष्णा के बन्धन को, जो पुनर्जन्म का कारण था, काट डाला; अब मैंने जीवन के विशाल भार को फेंक दिया है।"

किसान-सेवक बौद्ध भिक्षु पर भीषण मार

गोरखपुर जिले के महंथ का आततायीपन

प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु और चम्पारन के कर्मठ किसान-सेवक भिक्षु नागार्जुन पर एक मठाधीश ने जो अमानुषिक अत्याचार किया है, उसका पता उनके इस वक्तव्य से लगता है—

आज मैं दो दिन से गोरखपुर में पड़ा हुआ हूँ—एक दानवी दुर्घटना का शिकार होकर। घटना-क्रम यों है—इधर करीब एक-डेढ़ महीने से मैंने अपना कर्मक्षेत्र चम्पारन

के उस थाने को बना रखा है जो कि 'चम्पारन टापू' के नाम से विख्यात है। लेकिन उसका असल नाम है उसका धनहा। वह इतना गरीब और इतना बुद्धू इलाक़ा है कि उतनी गरीबी और उतने बुद्धूपन की कल्पना भी मुझे कभी नहीं हुई थी। चम्पारन का वह हिस्सा नारायनी के इसी पार किनारे-किनारे अधिकतर गोरखपुर और अल्पतर छपरे की पूर्वीय और उत्तरपूर्वीय सरहद की ओर पड़ता है। उदारहृदय धनीमानी व्यक्तियों को कहकर गरीब किसानों की मदद करते रहना मेरी लोकसेवक प्रवृत्तियों में से एक अन्यतम प्रवृत्ति है। इसी प्रसंग में मैं गत २७-१०-३८ को 'बुलहवा बाबा' (बुलहवा, गोरखपुर के महंथ) के पास गया कि आप एक निकटवर्ती गाँव में (जरनैली, धनहा, चम्पारन में) एक इनारा खुदवा दीजिए। मैंने उनके सामने जाकर, और साधुओं की तरह, उन्हें दंडवत् नहीं किया, उनके पैरों की धूल अपने सिर पर नहीं लगाई और जीहुज़ूरी नहीं की। मेरी यह अशिष्टता महन्थ को नागवार गुज़री! उनकी आँखें लाल हो गईं। बाबा ने अपने मैनेजर द्वारा मुझसे पुछवाया—"तुझमें हमसे बोलने की लियाकत है?"

"जिसे मुँह है, वह कुछ न कुछ बोल ही लेता है", मैंने जवाब दिया। फिर महंथ ने पुछवाया—"बातचीत का जो नतीजा निकलेगा उसे यह साधु बर्दाश्त कर सकेगा?"

"आपकी बात तो कुछ समझ ही नहीं पड़ती"—मैंने फिर कहा।

"ज्ञानदास, जा इसे समझा दे—अच्छी तरह से समझा दे। पीट साले को बेंत से, तभी यह समझेगा। मैं शान्तचित्त से बैठा था, उचित स्वाभिमान के साथ। पहली दफे ज्ञानदास ने मुझे पाँच बेंत लगाये। लेकिन मैंने तो चीवर उत्तरीय ओढ़ रखा था इसी से चोट नहीं के बराबर लगी। महंथ के बीसियों जीहुज़ूरी भगत तमाशबीन बने वहीं बैठे थे। उनमें से मुझ पर तरस खानेवाले कुछ भगतों ने मेरी ओर सरककर दबी जबान से मुझे सलाह दी—

"बोलिए सच्चे दरबार की जय"

और महाराजजी के पैर पकड़ कर बोलिये 'धर्मराज बाबा की जय'। मैंने सिर हिलाकर इन्कार कर दिया।

"अबकी कपड़ा उतारकर पीट, तभी इसका अहंकार नष्ट होगा।" ज्ञानदास ने अपने धर्मराज के हुक्म की तामील की। इस दफे मुझे चोट तो काफी लगी, लेकिन अभी तक खून नहीं निकला था। इस पर भी जब मैंने जयजयकार मनाने से इन्कार कर दिया तब मुझे नंगा कर डाला गया। चूँकि तीसरी दफे भी मैं बैठा ही रहा इसी लिये इस दफे की बेंतें भी पीठ पर ही पड़ीं—इस बार पीठ फूट गई। अब भगत-मंडली से चुप नहीं रहा गया; सब बोल उठे—"इस साधु के देह में अक्ल नहीं है, बस हड्डी ही हड्डी है, देखो तो इसकी ऐंठन, अब भी बाबा से माफी नहीं माँग रहा है! आहा कैसे हो जी, नाहक ही बेंत पर बेंत खाते चले आ रहे हो! आँख में आँसू तक नहीं—कैसे हो जी बज्र-हृदय!"

एक दो तीन......फिर पाँच बेंत। अबकी ज्ञानदास ने मेरी पीठ के साथ ही पास की दीवाल में टँगी एक बड़ी तस्वीर का शीशा भी फोड़ डाला और उधर महन्थजी

उठकर अपनी मंडली समेत केलाबागान की ओर चल पड़े—इसलिये चल पड़े कि भगतों ने शायद मुझ पर तरस खाकर अपनी ओर से ही जयजयकार मना दिया और चिल्लाकर कहा—

"करुणानिधान अब इस बेचारे को माफी मिले।"

× × × ×

सुना कि महाराज किसी ओर निकल गये हैं, शायद शाम तक लौटें। तब तक मुझे स्थान में ही बैठे रहने का आदेश दे गये हैं। पीछे दो-तीन भगत लौट आये और कहने लगे कि स्वामीजी अभी सात दिन यहीं रहिए। आप पर महाराज जी बेहद खुश हैं। इस स्थान में आकर सैकड़ों आदमी रोज नाक रगड़ते रहते हैं कि दो बेंत लगें तो जीवन सुधर जाय। हम सभी बाबा का यह आशीर्वाद—वेत्राघात—प्राप्त कर चुके हैं, तभी तो बाबा के साथ आनन्द-पूर्वक रह रहे हैं। आप तो सिर्फ एक इनारा के लिये आये हैं, अजी यहाँ तो बात में पचासों इनारा खुदवाकर आपके सुपुर्द कर दिया जा सकता है। बाबा की महिमा अपरम्पार है—कुछ दिन यहाँ बिताइए और महाराजजी की थाह लगाइए!

मुझे ऐसा मालूम पड़ा कि अब मैं अनिश्चित काल तक यहाँ क़ैद रखा जाऊँगा; क्योंकि जब पीठ-पूजा हो रही थी तो मेरे थैले की, जो वहीं एक तरफ रखा था, एक भगत तलाशी ले रहे थे। उसमें किसान-सभा की कुछ रसीद बहियाँ थीं, जिन्हें देखते ही गौरीशंकर हलवाई, जो एक ज़मींदार है और जो महंथ का खास मददगार व मैनेजर है, यह पीछे मालूम हुआ, बड़बड़ाने लगा था। साथ ही ज्ञानदास की गर्मी का पारा भी बढ़ गया जो कि बेंत के जरिये मेरी पीठ पर अब जरा जल्दी जल्दी उतरने लगा था।

यह सब बातें ११ बजे दिन की हैं। महन्थ दल-बल सहित बाहर चला गया था। हाते के अन्दर कुछ मजदूर अपने-अपने काम में लगे थे। एक बार मैंने कोशिश की कि हाते के बाहर निकल जाऊँ। लेकिन मजदूरों को यह कह दिया गया था कि इस साधु को कहीं मत जाने देना, इसलिये मैं अपने प्रयत्न में असफल रहा। एक बजे खाने के लिये कहा गया, मेरे इन्कार करने पर साधु और स्थान के नौकर-चाकर, कुली-मज़दूर सभी ने कहा कि १२ बजे बाद मैं कुछ नहीं खाता हूँ, इस पर भी उन्होंने पीछा नहीं छोड़ा—गरीब फिर भी दुर्बलात्मा होने के कारण जो उस राक्षसी स्थान में नौकरी और मजदूरी करते हैं और जिनके चेहरे से, मैंने अपने प्रति झाँकती हुई एक असमर्थ सहानुभूति देखी। मेरी चित्तवृत्ति इतनी क्षुब्ध हो रही थी कि कुछ भी खाना या पीना मुझे बिल्कुल सुहा नहीं रहा था, तथापि मुझे उनके आग्रह से थोड़ा दूध पीना पड़ा।

× × × ×

चार बजे देखता क्या हूँ कि श्री शीतल उपाध्याय, धनहा के एक किसान कुर्मी, स्थान के हाते के मुख्य द्वार से होते हुए सीधे मेरी ओर बढ़ते आ रहे हैं। महन्थ के परिचारकों ने उन्हें रोका लेकिन वे मुझ तक पहुँच ही गये। उपाध्यायजी मेरी डाक ले आये थे—३ लिफाफे और ५ अखबारों के पैकेट। लिफाफे तो खोलकर मैंने पढ़ लिये पर अखबार उन्हें लौटा दिया। मेरे थैले में जो आवश्यक कागजात थे वे भी उपाध्यायजी को मैंने सौंप दिये क्योंकि उन सार्वजनिक कागजों की फिक्र मुझे निजी देह से

ज्यादा थी। उसके बाद बगैर और कुछ कहे मैंने उन्हें अपनी फूटी हुई पीठ चीवर उतारकर दिखला दी। उपाध्यायजी चिल्ला उठे—'यह क्या, महाराजजी यह क्या।"

मैं उन्हें धीरे-धीरे सारा घटनाक्रम सुना गया। फिर क्या था, वे लगे गरजने। मेरा थैला, कम्बल आदि सँभाल कर उपाध्यायजी ने कहा—"चलिए भिक्षुजी, बाहर निकल चलें।" यह घटना गोरखपुर की पूर्वी सरहद पर—बुलहवा गाँव में घटी, अतः मैंने उचित समझा कि सीधे गोरखपुर जा पहुँचूँ। कल सुबह मैं यहाँ आया हूँ। यहीं डाक्टरी सार्टिफिकेट ली है और कोतवाली में रिपोर्ट भी लिखवा दी है। बेंत क्या पड़े, दो मास तक चुपचाप पड़े रहने का मसाला मिल गया है। अभी यहाँ मैं अपने पूज्य गुरुभाई भदन्त श्री आनन्द कौसल्यायनजी की देखभाल में दवा करवा रहा हूँ।

("जनता" से उद्धृत)

प्रथम प्रभात

(अनुवादक—उमाशंकर लाल बी० ए०, साहित्यरत्न)

मेरे जीवन का प्रथम प्रभात कब होगा—शाक्य कुँवर ने सोचा और साथ ही देखा दुःखमय संसार को। हृदय में वेदना, मस्तक में आँधी की बरसात लिये हुए वे दीर्घ निःश्वास लेने लगे—ऐसा निःश्वास जिसमें संसार को जिलाने की शक्ति थी। वह करुणा का उद्गार था; एक जलता हुआ आँवा संसार के दुःखों को जलाने के लिये—उसे पकाकर एक सुन्दर रूप देने को। वेदना विलीन हो गई विचार-धारा में, मच गया भीषण संग्राम मोह और माया का सिद्धार्थ से।

× × × ×

कभी जय कभी पराजय—यही संसार की गाथा है। सिद्धार्थ सिहर उठे। माया और मोह का संग्राम उन्हें अखरने लगा। उन्होंने उनका दमन करना ठान लिया—सर्वदा के लिये। समय की प्रतीक्षा करने लगे। आशा के बल पर दो वर्ष अटके रहे। परन्तु वह समय न आया—न आया। प्राण-पपीहा व्याकुल हो उठा। सिद्धाथ अधीर हो उठे—उस सुनहले समय की बाट में प्रारब्ध को कुमार ने कुचल दिया पैरों के नीचे और सन्नद्ध हो गये कमर कसकर अजेय शत्रुओं को काल के गाल में भेजने के लिये।

× × × ×

चौआलीस सहस्र रमणियों का जमघट एक से एक सुन्दर। उन्हीं के बीच सोया था हमारा नायक कुमार। अचानक आधी रात को जाग गया वह वीर—प्रकृति और संसार का निरीक्षण करने के लिये। उस नीरव अंधकार में उन्होंने माया और मोह का अड्डा देखा—घृणा से युक्त—उन रमणियों के मुख पर तथा राजप्रासाद के सिंहद्वार पर—नहीं-नहीं

कपिलवस्तु के कोने-कोने में सिद्धार्थ का उपहास करते हुए। राजकुमार ने उनको बदला चुकाने का दृढ़ निश्चय कर लिया। वह बदला क्षणिक नहीं बल्कि युग-युगान्तर का था।

× × × ×

सिद्धार्थ ने थोड़ी देर के लिये उनके विकट हास्य को देखा—भौंहें चढ़ गईं; उलटे पाँव लौटे राजमहल की ओर—देखा राजकुमारी गोपा को शुभ्र परिधान से युक्त सुन्दर शय्या पर और साथ ही पुत्र राहुल को माता के कोमल क्रोड़ में। राजकुमार भीतर जाना चाहते थे; परन्तु माया और मोह का अट्टहास उनकी आँखों के सामने नाच रहा था। बस क्या था, सिद्धार्थ दबे-पाँव लौट पड़े और निकले मोह और माया का दमन करने के लिये एक अनजान देश में। चलते समय उनके मुख से निकल पड़ा 'यही अर्धरात्रि मेरे जीवन का प्रथम प्रभात है'!

बौद्ध-धर्म प्रचार

लंका में तीसरी सदी ई० पू० का बौद्ध-धर्म प्रचार एक ऐसी घटना है जिसने दक्षिणी एशिया के भाग्य को विशेष प्रभावान्वित किया। इसमें ऐसी दार्शनिकता थी जिसका मनुष्य के क्रूर स्वभाव पर अटल तथा चिरस्थायी प्रभाव पड़ा। बौद्ध-धर्म के उपदेश अत्यन्त विशुद्ध तथा निर्मल थे; यही कारण है कि जनता पर भगवान् के उपदेशों ने एक मोहनी डाल दी। आजकल लोगों ने उस पर अज्ञान तथा अन्धविश्वास-रूपी कुहरा डाल दिया है, फिर भी भगवान् के संदेश की प्रतिध्वनि हमारे कानों में आज भी गूँज रही है और उसी के फल-स्वरूप हमारा एशिया महाद्वीप सभ्य बना है।

बौद्ध-धर्म की थेरवाद शाखा रूपी प्रदीप महिन्द ने ३०७ ई० पू० में लंका में और उसी धुँधले प्रकाश में वह समस्त संसार में प्रज्वलित हुआ। प्रथम सदी ई० पू० में सम्राट् बालगमबाहु ने अल्युविहार के पास उन समस्त उपदेशों को एक पुस्तिका का रूप दिया जो ४०० वर्ष पहले से चले आ रहे थे. और उसी समय लंका बौद्धधर्म का एक केन्द्र बन गया जहाँ से बहुत से देशों ने अपने धार्मिक तत्त्व को ग्रहण किया।

लंका से बौद्ध धर्म के उपदेश ग्रहण करनेवाले देशों में से दक्षिणी ब्रह्मा भी एक था, जहाँ बहुत पहले 'mon' जाति के लोग रहते थे; उनकी राजधानी थेरन थी जहाँ से ब्रह्मा के साहित्य, कला और धर्म का प्रादुर्भाव हुआ। यह स्थान उस समय रामान्य नामक देश का एक बंदरगाह था। इसमें थेरन, हंथावादी, मुत्तमा (मत्तबान) आदि देश सम्मिलित थे। लोगों की यह धारणा है कि अशोक ने ३०६ ई० पू० में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिये सोणक और उत्तर स्थविरों को वहाँ भेजा था। परन्तु हमारे पास इसके लिये कोई प्रमाण न था।* महावंश में ब्रह्मा (स्वर्ण-भूमि) के बौद्ध धर्म-प्रचार का उल्लेख है। Duroisceec का कथन है कि ५०० ई० तक लंकावासी

---

* समन्तपासदिका नामक पालि ग्रन्थ से यह प्रमाणित है कि अशोक ने उक्त दोनों स्थविरों को सुवर्ण भूमि (बर्मा) भेजा था।

—संपादक।

अशोक के शिलालेखों को नहीं पढ़ सकते थे। उन शिलालेखों में ब्रह्मा में धर्म-प्रचार का कुछ भी उल्लेख नहीं है। अतः स्पष्ट है कि अशोक के बाद लंका द्वारा ब्रह्मा में बौद्ध-धर्म का प्रचार हुआ।

जब से लंका में बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ, तब से उसके प्रवाह का क्रम जारी है। ऐसा होने पर भी उसके ऊपर नाना प्रकार के प्रहार हुए। अनुराधपुर जब शासन का केंद्र था तब महायान तथा थेरवाद सम्प्रदाय वालों की पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता ने बहुत विकट रूप धारण किया था। महायान सम्प्रदाय अधिक शक्तिशाली था; इसके फलस्वरूप महासेन के शासन-काल (२७५–३०२ ई०) में बहुत से भिक्षुओं का दल राजधानी से भाग गया।

बहुत प्राचीन काल में ही हिन्द महासागर के उस पार धार्मिक प्रचार का कार्य प्रारम्भ हो गया था। प्र[illegible] सदी में जावा में हिन्दू धर्म का प्रचार हो गया; परन्तु पाँचवीं सदी में वहाँ उसके स्थान पर बौद्ध धर्म की स्थापना हुई। यह धर्म पहले-पहल सुमात्रा में फैला और धीरे-धीरे विकसित होता हुआ जावा तक पहुँच गया। हिन्दू तथा बौद्ध सभ्यता का जावा के साहित्य तथा कला आदि पर विशेष प्रभाव पड़ा। पाँचवीं शताब्दी में चीनी यात्री फाहियान लंका गया। [illegible] से चीनी यात्री लंका में बौद्ध-धर्म-सम्बन्धी ग्रंथों का अध्ययन करने के लिये आये। यह क्रम आगामी दो शताब्दियों तक जारी रहा।

कम्बोडिया में थेरवाद शाखा का प्रचार बहुत बाद में हुआ। तामिल आक्रमण के कारण अनुराधपुर उजाड़ सा हो गया और बौद्ध धर्म को इतना धक्का लगा कि उसके अस्तित्व का प्रायः लोप सा हो गया। सन् १०७१ ई० में शत्रुओं को पराजित करने के बाद सम्राट् विजयबाहु ने पोलेन्नरूव को अपनी राजधानी बनाया। उसने बौद्ध-धर्म तथा भिक्षु-संघ को बहुत हीन दशा में पाया।

इसके चौदह वर्ष पहले (सं० १०५७) अनवरत्त (ब्रह्मा का नैपोलियन) राज-सिंहासन पर बैठा। उसने थेटेन पर आक्रमण किया और वहाँ से बहुत सी किताबें अपने साथ ले गया। वहाँ पर बौद्ध धर्म बराबर उन्नति करता गया।

इस प्रकार विजयबाहु ने ब्रह्मा में जाकर बौद्ध धर्म का निरीक्षण कर पुनः लंका में उसकी जड़ जमाई। उसने दंतधातु का एक उपहार भेजा, जिसका प्रदर्शन सम्राट् अनवरत्त ने बहुत धूमधाम के साथ किया।

विजय के उत्तराधिकारी पराक्रम (११५५ से ११८० तक) ने बौद्ध-धर्म का पुनरुद्धार किया और उसकी संरक्षकता में बौद्ध-धर्म की विजयिनी पताका लंका के कोने-कोने में फहराने लगी। अनवरत्त की तरह उसने भी बौद्ध धर्म की उन्नति में विशेष सहयोग दिया।

अब हम श्याम का उल्लेख करते हैं, जहाँ बौद्ध धर्म की तैलिंग शाखा का प्रचार राजकुमारी चाँमथेवी के द्वारा ७वीं शताब्दी में हुआ था। धीरे धीरे वहाँ पर बौद्ध-धर्म का प्रचार बढ़ता गया और ७०० वर्ष के भीतर समस्त श्याम बौद्धधर्मावलम्बी हो गया। इस देश में ब्रह्मा का प्रभाव विशेष रूप से पड़ा।

पांड्य आक्रमण के कारण लंकावासियों को बहुत अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और वहाँ के शासकों को समय-समय पर राजधानी का परिवर्तन करना पड़ा जिसके कारण बौद्ध-धर्म को भी भिन्न-भिन्न परिस्थितियों का सामना करना पड़ा, परंतु

इतना होने पर भी समस्त बौद्ध राष्ट्र लंका को अपना धर्मगुरु मानते हैं। उसके प्रति उनकी वही श्रद्धा है जो श्रद्धा यूरोपवासियों की रोम के प्रति।

सं० १५६० ई० में पुर्तगालवासियों ने तामिलों से जफना को ले लिया और इस प्रकार 'दंतधातु' पर अपना अधिकार जमा लिया और उसे गोआ ले गये। पीगू के सम्राट् ने आठ लाख रुपया देकर उसे लेना चाहा परंतु इसमें उसे सफलता न मिली। यह 'दंत-धातु' अंत में किसी प्रकार लंका को लौट आया जहाँ से यह सन् १५७६ ई० में पीगू के सम्राट् के पास भेज दिया गया। उसने इसे एक सुंदर मंदिर में सुशोभित किया।

यद्यपि प्राचीन काल में आजकल की तरह बड़े बड़े जहाज़ न थे, विस्तृत समुद्र को पार करना अत्यन्त कठिन था, परंतु इतना होने पर भी लंकावासियों ने बौद्ध धर्म को महाद्वीप के कोने-कोने में फैलाया और उसके लिये अपना तन, मन, धन विसर्जित कर दिया।

बौद्ध युग का एक विशाल विश्वविद्यालय

(लेखक—श्री देवेन्द्र)

प्राचीन काल में भारतवर्ष की सभ्यता और संस्कृति चरम सीमा तक पहुँच गई थी जिसका अधिक विकास बौद्धकालीन युग में पाया जाता है। उस समय की विद्या की उन्नति की ख्याति स्वदेश में ही सीमित नहीं थी, बल्कि दूर-दूर देशों से विद्या सीखने की इच्छा से लोग यहाँ आया करते थे। उस समय शिक्षा का प्रचार तीन प्रकार से किया जाता था। पहला जहाँ कि भिक्षु लोग रहते थे वहाँ एक विद्यालय अवश्य होता था, दूसरे बौद्ध भिक्षु देश में परिभ्रमण कर अशिक्षित जनता में शिक्षा का प्रचार करते थे, तीसरे बड़े-बड़े विश्वविद्यालय होते थे जहाँ कि पारंगत विद्वान् तथा आचार्य शिक्षक का कार्य करते थे। उन विद्यालयों का आज केवल नाम ही अमर है। उन विश्वविद्यालयों में तक्षशिला, नालन्दा, विक्रम-शीला, ताम्रलिप्ति, मथुरा तथा काशी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। तक्षशिला जैसे विद्या के केन्द्र में मंत्रविद्या में निपुण और नीतिशास्त्र-विशारद चाणक्य जैसे विद्वान् हुए हैं।

उस समय के उन विशाल विश्वविद्यालयों की बड़ाई और तत्कालीन विद्यालयों से निकले हुए विद्यार्थियों की क्या अवस्था थी, उसका पता हमें केवल चाणक्य के जीवन को पढ़ने से विदित हो जाता है।

उस समय भारत का वाणिज्य लोक-प्रसिद्ध था। भारतीय नाविक अपने यहाँ का सामान नावों पर लादकर जावा, सुमात्रा, सिकन्दरिया, मिस्र, अरब तथा भूमध्य सागर के तटवर्ती देशों में ले जाया करते थे।

उस समय व्यापार उन्नत अवस्था में था, भारत में जहाज बहुत चलते थे जिसका सबसे अच्छा उदाहरण यह है कि सिकन्दर की सेना भारतीय जहाजों पर बैठकर अपने देश को लौट गई थी। उस समय बन्दरगाहों का महत्त्व बहुत अधिक था। स्थल तथा जल-

मार्ग द्वारा बहुत से बौद्ध यात्री भगवान् बुद्ध की जन्मभूमि में आते थे और यहाँ के विश्वविद्यालयों से शिक्षा प्राप्त करते थे।

उस स्थान का महत्त्व कितना बढ़ा चढ़ा रहा होगा जो कि समुद्र के किनारे एक तो बन्दरगाह हो, दूसरे बौद्ध धर्मावलम्बियों के विद्या का केन्द्र।

ऐसे स्थानों में से ताम्रलिप्ति—वर्त्तमान तामलुक (मेदिनीपुर, बंगाल)—था जो कि समुद्र के किनारे होने से व्यापार तथा विद्या का एक प्रमुख केन्द्र था। अन्य देशों से यहाँ जलपोत आते थे, माल को उतारते थे, भारतीय माल खरीदकर ले जाते थे तथा बौद्ध यात्री भी चढ़ते-उतरते थे।

लंका में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिये अशोक ने अपने बेटे महेन्द्र तथा बेटी संघमित्रा को पाटलिपुत्र से ताम्रलिप्ति और फिर ताम्रलिप्ति से लंका जहाज से ही भेजा था। लंका के राजा ने अशोक के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिये अपने भतीजे को भेजा था जो इसी ताम्रलिप्ति बन्दरगाह पर उतरा था। अशोक के समय में ताम्रलिप्ति मौर्य साम्राज्य के छोटे से प्रदेश की राजधानी थी। अशोक ने वहाँ एक स्तूप और मठ बनवाया। इस कारण इसकी प्रसिद्धि और भी बढ़ी और वह पूर्वीय भारत का केन्द्र समझा जाने लगा। वहाँ के विश्वविद्यालय की स्थापना कब हुई, यह बतलाना बहुत ही कठिन है। मालूम होता है चीनी यात्री फ़ाहियान जब भारत आया उस समय नालन्दा की स्थापना नहीं हुई थी। पाटलिपुत्र में रहने के अनन्तर फ़ाहियान ताम्रलिप्ति गया। उसने उसके बारे में लिखा है कि यहाँ २४ संघाराम थे जहाँ पर लगभग दो हज़ार भिक्षु रहते थे और शिक्षा पाते थे। उस प्रान्त में भगवान् बुद्ध के अनुयायी अधिक संख्या में थे। ताम्रलिप्ति में धर्मग्रन्थों तथा मूर्त्तियों का एक विशाल संग्रहालय था जिसकी सहायता से फ़ाहियान ने धर्मसूत्रों तथा मूर्त्तियों की प्रति लिपियाँ तैयार की थीं।

ह्वेनसाङ्ग ने भी अपनी यात्रा में ताम्रलिप्ति का वर्णन किया है। उस समय वहाँ लगभग १० संघाराम थे और १५०० भिक्षु रहते थे। उस समय में वहाँ अशोक का बनवाया हुआ शिला-स्तम्भ था जिसकी ऊँचाई लगभग १६२ फीट थी जिसमें लिखा था—

"धर्म यह है कि दास और सेवकों से उचित बर्ताव किया जाय, माता-पिता की सेवा की जाय, मित्र परिचित सम्बन्धी श्रमण और ब्राह्मणों को दान दिया जाय और प्राणियों की हिंसा न की जाय।"

सन् ६७३ ई० में जब चीनी यात्री इत्सिंग अध्ययन करने की कामना से भारत आया उस समय उसने नालन्दा में जाने से पहले दो वर्ष तक ताम्रलिप्ति में शिक्षा ग्रहण की। उसके समय में पाँच विहार थे, विश्वविद्यालय के खर्च के लिये जमीन थी, जिसकी आमदनी से वहाँ का खर्च चलता था। भिक्षुगण स्वयं खेती का कार्य नहीं करते थे। जमीन किसानों को दे दी गई थी और उसकी पैदावार का तिहाई वे किसानों से लेते थे। या तो भिक्षु-संघ की ओर से कुछ नौकर थे जो कृषि-कर्म करते थे और सम्पूर्ण उपज का अधिकारी संघ होता था, नौकरों को वेतन दिया जाता था।

ताम्रलिप्ति की शिक्षा का मान तक्षशिला नालन्दा के समान नहीं था। वहाँ विदेशी यात्री शिक्षा ग्रहण करते थे। वह अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा का केन्द्र था। जिस प्रकार काशी हिन्दू

धर्मशास्त्र का, तक्षशिला वैद्यक तथा राजनीति का, उज्जैन ज्योतिषशास्त्र का और विक्रमशिला तांत्रिक बौद्धधर्म का केन्द्र था उस प्रकार ताम्रलिप्ति के लिये कोई विशेषण नहीं लगाया जा सकता किन्तु वह शिक्षा का एक केन्द्र था। विदेशी यात्रियों को नालन्दा में सम्मिलित होने के लिये पहले ताम्रलिप्ति में अध्ययन करना पड़ता था।

ताम्रलिप्ति का पतन कब हुआ, यह बतलाना कठिन है। किन्तु यह कहा जा सकता है कि बौद्ध धर्म के साथ ही साथ इसका भी पतन हुआ। हर्ष की मृत्यु के बाद सातवीं शताब्दी में बौद्ध धर्म का पतन प्रारम्भ हुआ। शायद उसी समय यह विश्वविद्यालय भी कालकवलित हुआ हो।

बंगाल में जब सेन वंश का शासन था उस समय ब्राह्मण धर्म ने बंगाल में जोर पकड़ा। राजाओं ने ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा की और उनके धर्म के प्रचार में सहायक हुए। उस समय बंगाल में बौद्ध धर्म का ज़ोरों से पतन हुआ, कदाचित् बौद्ध धर्म के साथ ही ताम्रलिप्ति का भी पतन शुरू हो गया था।

यवनों के जिस आक्रमण ने नालन्दा, तक्षशिला का नाश किया, शायद उसी ने इसे भी न धर दबाया हो। फिर ताम्रलिप्ति की उन्नति का एक महान् कारण उसका बन्दरगाह होना था और बालू उसके तट पर एकत्रित हो गई, जिससे वह समुद्र से मीलों दूर हो गया। इन सब कारणों से ताम्रलिप्ति जैसे विश्वविद्यालय का सर्वनाश हुआ। भूमि में दबे हुए उसके ध्वंसावशेष ही उसकी कीर्त्ति के स्थायी स्तम्भ हैं।

सम्पादकीय वक्तव्य

(सारनाथ का सातवाँ वार्षिकोत्सव तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन)

सारनाथ तीव्र गति से उन्नति-पथ पर अग्रसर हो रहा है। दिन प्रति दिन अभिवृद्धि होती जा रही है, और यह स्थान प्रायः समस्त बौद्ध जगत् का केन्द्र बन गया है। चारों ओर से यात्रीगण आकर एकत्र होते हैं। नानादेशवासी, नानाभाषाभाषी व्यक्तियों का अपूर्व सम्मेलन हो!

अद्भुत है वह शक्ति जिसकी प्रेरणा से भिन्न भिन्न व्यक्ति परस्पर सहायक एवं बन्धु होते जाते हैं। धन्य है वह सन्देश जिसके माधुर्य से विश्व का प्राङ्गण गूँज रहा है।

अहो भाग्यं !! "धर्म" अखिल संसार की आशा है; सकल प्राणिमात्र की प्रतिष्ठा है, समुच्चय भेद-भावों का समाधान है।

किसी धर्म एवं सन्देश की महत्ता उसके सार्वभौमत्व पर निर्भर है। बौद्ध धर्म इसका ज्वलन्त उदाहरण है। आज हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि वह संसार में जगह-जगह पर, तरह-तरह के लोगों का एक "सङ्घ" बनाने में कृतकार्य हुआ है। वह प्रायः सब देश के, सब जाति के एवं सब श्रेणी के व्यक्तियों का आलिङ्गन करता है। "बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, सङ्घं शरणं गच्छामि;" इस मन्त्र का साक्षात् परिणाम दिखलाई दे रहा है। बुद्धि का विकास, धर्म का प्रचार एवं सङ्घ की शक्ति उत्तरोत्तर

बढ़ती ही जा रही है अर्थात् बुद्धि-विकास से धार्मिकभाव, और धार्मिकभाव से सङ्घ का सङ्गठन होता रहता है।

जिस प्रकार छोटी-मोटी नदियाँ एकही समुद्र में जा गिरती हैं, और काले पानी के रूप में परिणत हो एकसी दिखलाई देती हैं, ठीक उसी प्रकार अनेक प्रकार के लोग "बुद्धशासन"-रूपी समुद्र में एकता का स्नान कर लेते हैं। भगवान् बुद्ध स्वयं कहते हैं "हे भिक्षुओ! मेरे शासन की उपमा समुद्र से दी जा सकती है, जिस प्रकार नदियाँ समुद्र में गिरने पर, यह अमुक नदी का पानी है और यह अमुक नदी का, कहकर अपनी अलग विशेषता नहीं प्रमाणित कर सकतीं, उसी प्रकार अनेक तरह के लोग आकर मेरे शासन में 'शरणागत' होते हैं; परन्तु उनमें कोई विशेषता नहीं रह जाती। अतएव उनके समाज, सम्प्रदाय, देश, एवं श्रेणी या की परम्परा की विशेषता सर्वथा लोप हो जाती है। एकमात्र मैत्रीभाव ही इस शासन की विशेषता है।"

कितना उत्तम उपदेश, कितना उत्तम आदर्श! वास्तव में धर्मान्यायी बनने का लाभ, उसका गौरव, उसकी विशेषता एवं उसका महत्त्व यही है। यही "धर्म" का प्रत्यक्ष फल है। परस्पर एकता को समझना ही विकास का प्रमाण है।

धार्मिक दृष्टि से ही नहीं बल्कि, राष्ट्रीय दृष्टि से भी हम एकता की आवश्यकता का प्रतिक्षण अनुभव करते रहते हैं, विशेष रूप से आज का युग "सङ्घे शक्तिः कलौ युगे" का प्रमाण है। वह एकता अथवा अन्तर्जातीय संगठन की प्रार्थना करता रहता है। आज का युग सङ्घर्ष का युग है; पर सङ्घर्ष ही से संगठन की आवश्यकता प्रतीत होती है। एक देश दूसरे देश पर विजय प्राप्त कर लेने में तथा एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय पर हमला करने में तल्लीन है। ऐसी ही परिस्थितियाँ हमारी उस महान् आवश्यकता को सिद्ध करती हैं। यदि किसी 'धर्म', शास्त्र अथवा उपाय से हमारे अन्तर्जातीय सम्बन्ध की स्थापना हो सके, तो उसी को आज का समाज चाहता है। वही हमारे कल्याण का कारण हो सकता है। वर्त्तमान युग की समस्या उसी से हल हो सकती है। अस्तु!!

इसमें सन्देह नहीं है कि अबकी बार सारनाथ के गत शुभ अवसर पर उपस्थित सज्जनों को अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में सहयोग होने का अवसर मिला होगा। इँग्लेंड, जर्मनी, चीन, जापान, तिब्बत, बर्मा, सिंहल, स्याम, इत्यादि देशवासी तथा भारतीय बौद्धगण उपस्थित थे। इससे सिद्ध होता है कि राष्ट्रीय बातों में भिन्न होते हुए भी लोग 'धर्म' के क्षेत्र में एक हैं।

साथ ही उससे यह परिणाम, यानी सिद्धान्त, निकलता है कि यदि मनुष्य एक प्रयत्न में, एक साधन में विफल हो जाय, तो दूसरे में सफल हो सकता हैं; यदि एक में हताश हो जाय तो दूसरे के लिए आशा रख सकता है। वास्तव में मनुष्य इतो भ्रष्टः ततो भ्रष्टः हो ही नहीं सकता। उपाय के पश्चात् उपाय, साधन के अनन्तर साधन होता रहता है। जगत् में उपायों की संख्या अनन्त है। साधनों की सीमा नहीं है। उदाहरणार्थ राजनैतिक क्षेत्र में शत्रु धार्मिक क्षेत्र में मित्र होते हैं।

"किसान-सेवक बौद्ध भिक्षु पर भीषण मार"

यह खेद तथा विस्मय के साथ कहना पड़ता है कि इतना सुधार होने पर भी भारत में बीसवीं सदी से कई एक शताब्दियों से आगे के लोग अब भी विद्यमान हैं। यह

केवल हमारे नवीन भारत को ही नहीं बल्कि बीसवीं सदी को भी कलङ्कित करता है। अभी गोरखपुर जिले में सुप्रसिद्ध विद्वान् भिक्षु नागार्जुनजी के विषय में जो दुर्घटना हुई उससे विदित होता है कि हमारे देश की दशा कहाँ तक सुधर गई है। गोरखपुर ऐसे जिले में, जहाँ पर भगवान् बुद्ध ने भी अपना अन्तिम समय बिताया था, और जहाँ पर काँग्रेस का विशेष प्रभाव है, ऐसी घटनाओं का होना बहुत ही विस्मयजनक है। देशबन्धु नागार्जुनजी लङ्का के सुविख्यात विद्यालङ्कार कालेज के अधिपति धर्मानन्द नायक पाद के शिष्य हैं। अपने देश की दशा से उनका हृदय काँप उठा तब वे "चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजन-हिताय बहुजनसुखाय" की बुद्ध-वाणी को गाते हुए, और ग्रामीण बन्धुओं की सेवा करते हुए, ग्रामों में भ्रमण करने लगे। ऐसी अवस्था में जब कि भारतमाता ऐसे ही महात्माओं का स्वागत कर रही है, उनके प्रति ऐसा व्यवहार करना पाशविक वृत्ति से भी हीन है।

सारनाथ में स्यामी राजकुमार का आगमन

गत महीने (November) की [illegible] तारीख सारनाथ के लिए बड़े सौभाग्य का दिन था। उपर्युक्त तिथि पर स्याम के राजकुमार परिबत्र (H. R. H. Prince Paribatra of Siam) सारनाथ के मूलगन्धकुटी विहार को देखने के लिए पधारे थे। आप वर्त्तमान स्याम-नरेश, आनन्द महीतल, के चाचा हैं और स्याम के सुप्रसिद्ध तथा प्रतिष्ठित राजकुमारों में से एक हैं। आप दार्जिलिङ्ग से आ रहे थे। रास्ते में बुद्धगया के संसार-प्रसिद्ध बौद्ध मंदिर को देखने के लिए उतरे, जो अभाग्य-वश सारे बौद्ध-संसार का प्रथम तीर्थ-स्थान होने पर भी अब तक बौद्धों के हाथ में नहीं आया। मंदिर की व्यवस्था को देखकर आपको अत्यन्त खेद हुआ। कहते थे कि स्याम में होता तो यह सोने से जगमगाता। मंदिर की परिक्रमा करने के बाद आप बड़ी चिंतितावस्था में अपने Saloon को लौटे। उसके बाद आपने बनारस के लिए प्रस्थान किया। १७ तारीख १०-३० बजे प्रातःकाल आप अपनी राजकुमारियों के साथ सारनाथ पधारे। पहिले आप महाबोधि पुस्तकालय देखने के लिए गये। तदनंतर आपने मूलगन्धकुटी विहार के लिए प्रस्थान किया। मंदिर तथा उसकी दीवारों पर अंकित चित्रों को देखकर आप इतने प्रसन्न हुए थे कि कहने लगे—"आज ही हमें असली पूजा करने का अवसर मिला है।" भगवान् बुद्ध की अच्छी तरह पूजा कर आप बौद्धकालीन भग्नावशेषों को देखने के लिए प्रस्थित हुए। आपने प्रसन्नता-पूर्वक सारे खंडहरों के चित्र खींचे। तत्पश्चात् आप अजायबघर देखने गये। अजायबघर से निकल कर आप महाबोधि सभा के प्रधान मंत्री, श्री देवप्रिय वलिसिंह, के आग्रह से कुछ चायपानी के लिए मूलगन्धकुटी-विहार के पुस्तकालय में गये। वहाँ पर आपने बौद्ध धर्म तथा उसके भारत में पुनर्जन्म के बारे में बातें कीं। लगभग पौन घंटे तक पुस्तकालय में आराम कर आप अपने Saloon में लौटे। सभा के कार्यों से आप बड़े संतुष्ट थे। लौटने के पहिले आपने प्रधान-मंत्री को स्वागत के लिए धन्यवाद दिया और सभा की उत्तरोत्तर उन्नति की अभिलाषा प्रकट की।

हमारी नम्र प्रार्थना है कि त्रिरत्न के अनुभाव से आप कुशल-पूर्वक अपने देश पहुँचें और बुद्ध धर्म की सेवा में चिरंजीवी हों।

(करुणा सामरोर स्यामी-सारनाथ)

अमेरिका में बौद्ध-धर्म

लगभग ३० साल हुए कि प्रथम बुद्धिस्ट मिशनरी का सुसंगठित कार्य अमेरिका में होंगवंजी के क्योटो (जापान) सम्प्रदायवाले बुद्धिस्ट मठ ने प्रारम्भ किया। प्रयोगात्मक रूप से अमेरिका की तमाम जापान बस्तियाँ कट्टर बौद्ध-धर्मावलम्बी हैं; और इसलिये यह आवश्यक समझा गया कि इन बाहर के बसे हुए लोगों तथा उनके बच्चों को कुछ धार्मिक शिक्षा देने की कोशिश की जानी चाहिए। इसके लिये बहुत से योग्य नवयुवक हवायना टापू तथा कैलोफोर्निया में भेजे गये जहाँ कि उनके धर्मावलम्बियों ने उनका हृदय से स्वागत किया। बहुत ही थोड़े समय के अन्दर अमेरिका के पैसिफ़िक सागर के समीपवर्त्ती प्रत्येक नगर में मन्दिर बन गये। आजकल अमेरिका में (केनाडा, मैक्सिको तथा हवाई के अलावा) चौंस० पुरोहित तथा ६५००० प्रचारक हैं। इनमें से लगभग १२०० ह्वाइट अमेरिकन हैं।

मिशनरी का कार्य सुचारु रूप से हो रहा है। बौद्धों का साधारणतः बहुत अधिक उपदेशों तथा प्रस्ताव पास करने का जो ढंग है उसके मुक़ाबिले में अमेरिका में प्रारम्भ ही से बौद्धों का आन्दोलन क्रियात्मक हो रहा है। बौद्ध-धर्म के माननेवालों की संख्या बिना किसी विघ्न-बाधा के बढ़ रही है। समय-समय पर नये केन्द्रों की स्थापना होती है तथा इन केन्द्रों में योग्य व्याख्यान-दाता, सुसंगठित बालकों के उपदेश, शिक्षक तथा पुस्तकों आदि का प्रबन्ध किया जाता है। बहुत से व्यायाम-संघ, विद्यार्थियें के संघ तथा दान संघ आदि हैं। इन सब कार्यों के फलस्वरूप बौद्ध धर्म के प्रति भक्ति तथा उसके उपदेशों में सदैव अग्रसर करनेवाली रुचि बढ़ रही है।

अमेरिका में बौद्ध धर्म के प्रत्येक सम्प्रदाय के प्रतिनिधियें का पाया जाना इस बात को आवश्यक बना देता है कि वहाँ के मठ असम्प्रदायवादी हैं। जब कि वहाँ के सब मठ महायान सम्प्रदायवालों के हैं तब भी थेरवाद के माननेवाले वहाँ बहुत अधिक सहानुभूति पाते हैं, और यह विश्वास पाया जाता है कि किसी भी एक सम्प्रदाय के नियम वहाँ नहीं चाहिए। संसार में दूसरे स्थानों पर इतनी धार्मिक स्वतन्त्रता पाना कठिन है, जितनी कि अमेरिका की बौद्ध बस्तियों में है।

लोगों का विचार है कि बौद्ध-धर्म का भविष्य नई दुनिया में बहुत ऊँचा है। यह सत्य है कि अमेरिका बहुत शीघ्रतापूर्वक अपने पुराने धर्म को हटाकर सत्यता की खोज में जा रहा है। संसार के तमाम धर्मों में बौद्ध धर्म-ही दोष-रहित तथा स्वच्छ रेकार्ड रखता है।

(श्रीदेवेन्द्रनाथ सारनाथ)

रजिस्ट्री की संख्या ए २७६२

सूचना

हिन्दी-प्रेमियों को यह सुनकर प्रसन्नता होगी कि त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप एम० ए० ने अनेक पाली ग्रन्थों का हिन्दी-अनुवाद पाठकों के सम्मुख उपस्थित किया है। अब अगले वर्षों में "संयुत्तनिकाय" और "खुद्दकनिकाय (के मुख्य भागों)" का हिन्दी अनुवाद छप जायगा। महाबोधि सभा इन ग्रन्थों के सुन्दर प्रकाशन के लिये कटिबद्ध है किन्तु यहाँ हिन्दी-प्रेमियों का भी कुछ कर्तव्य है जिसका पालन वे इस प्रकार कर सकते हैं— (१) पुस्तकों को खरीद कर और उनका प्रचार कर, (२) आठ आना भेज महाबोधि-ग्रन्थमाला के स्थायी ग्राहक बनकर, (३) सौ या अधिक रुपया दे ग्रन्थमाला के संरक्षक बन।

स्थायी ग्राहकों को ग्रन्थमाला की पुस्तकें 'मज्झिम निकाय', 'विनय-पिटक', 'दीघनिकाय' और "उदान" तीन-चौथाई दाम में मिलेंगी। संरक्षकों का नाम पुस्तक के साथ छाप दिया जायगा और उन्हें सभी पुस्तकें मुफ्त मिलेंगी।

हिन्दी में बौद्ध साहित्य

दीघ निकाय	५)
मज्झिम निकाय	६)
विनय-पिटक	६)
जातक-कथा (प्रथम भाग)	१)
धम्मपद	=)
तिब्बत में सवा बरस	३॥)
बुद्ध-वचन	।=)
भगवान् हमारे गौतम बुद्ध	-)
उदान	१)
मिलिन्द-प्रश्न	३॥)
वादन्याय (संस्कृत)	३)
बुद्धचर्या	५)
अभिधर्मकोष: (संस्कृत)	५)
वार्तिकालङ्कार (संस्कृत)	३)
तिब्बत में बौद्ध-धर्म	१॥)
बुद्ध और उनके अनुचर	१)
भगवान् बुद्ध की जीवनी	१)
बुद्ध	-)

मिलने का पता—

महाबोधि पुस्तक-भण्डार,
सारनाथ, बनारस।

प्रकाशक—धम्मजोति, महाबोधि-सभा, सारनाथ, बनारस।
मुद्रक—धम्मजोति, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, बनारस-ब्रांच।

धर्म-दूत

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्स

विषय-सूची

"पराधीनता में दुख ही दुःख है, और स्वाधीनता में सुख ही सुख।"

—भगवान बुद्ध

वर्ष ४
अंक १०

माघ पूर्णिमा बु० सं० २४८२ / वि० स० १९९५

वार्षिक मूल्य ॥)

परम पुरुषार्थ

(लेखक—भगवत दत्त)

सिद्धार्थ चिन्ता में डूबे हुए एकान्त में बैठे कुछ सोच रहे हैं, कि पितृ-ऋण से कैसे छुट्टी मिले !

'अमृत-पद' की प्राप्ति में यह चिन्ता बाधा दे रही थी। यशोधरा के गर्भ से राहुल का जन्म हुआ। सिद्धार्थ ने निश्चय कर लिया कि अब बाधा दूर हो गई—चलो अब 'अमृत-पद' की खोज में निकल पड़ूँ।

गृह-त्याग करते समय सिद्धार्थ नन्हें बच्चे का मुँह चूमना चाहते हैं, पर चूमते नहीं। ज़ोर से झटका देकर बन्धन को तोड़ ही दिया।

छन्दक कहता है—'जिस राज्य को पाने के लिए तपस्वी तप करते हैं, वह राज्य आपको स्वभाव से ही मिला है, फिर भी आप उसे लात मार रहे हैं !'

पर, सिद्धार्थ की कड़ी प्रतिज्ञा ने छन्दक को निरुत्तर कर दिया।

वज्राशनिपरशुशक्तिशराश्मवर्षे,
विद्युत्प्रभा न ज्वलितं क्वथितं च लोहं।
आदीप्तशैलशिखिरा प्रपते मुमुर्ध्रि
नोवा अहं पुनर्ज्जनेय राज्याभिलाषं॥

× × × × ×

वृद्ध शुद्धोदन पुत्र-वियोग में तड़प रहा है। यशोधरा तप और संयम की साधना में घुल-घुलकर अपने स्वामी की सिद्धि को प्रकाश पहुँचा रही है।

बूढ़े शुद्धोदन की, वियोगिनी यशोधरा की, हठीले राहुल को भी प्रसादी मिलती है। भगवान् की कृपा से सभी तृष्णा पर विजय लाभ कर लेते हैं। 'अष्टांगिक मार्ग' का प्रकाश पाकर, दुःख-चतुष्टय ऐसा भाग जाता है, जैसे सूर्य की किरणों को देखकर रात्रि का घोर अन्धकार।

धन्य है भगवान् बुद्ध का परम पुरुषार्थ।

अपनी बात

वैशाख पूर्णिमा आ रही है—हमारे जीवन में नवस्फूर्ति प्रदान करने। यह वही पवित्र दिन है जिस दिन भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ था, जिस दिन उन्होंने बुद्धत्व प्राप्त किया था और जिस दिन किया था उन्होंने महा—परिनिर्वाण प्राप्त। यह दिन समस्त संसार के लिये विशेष कर हम भारतवासियों के लिए अत्यन्त पवित्र दिन है। इस अवसर पर हम पाठकों को "धर्म-दूत" का नव वर्षांक भेंट करना चाहते हैं। पर, अर्थाभाव के कारण हम इसकी आयोजना करते हिचकते हैं। अतः हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपनी कठिनाई आपके सम्मुख रख दें। हमें पूर्ण विश्वास है कि बौद्धधर्म के प्रेमी और पाठक हमें अपनी आयोजना में तन-मन-धन से सहायता प्रदान करेंगे।

धर्म-दूत

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवलपरिपुन्नं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग (विनय पिटक)

"भिक्षुओ ! सर्व साधारण के हित के लिये, लोगों को सुख पहुँचाने के लिये, उन पर दया करने के लिये तथा देवताओं और मनुष्यों का उपकार करने के लिये घूमो। भिक्षुओ ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्थाओं में कल्याणकारक धर्म का, उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य्य का प्रकाश करो।"

सम्पादक—धम्मानन्द

वर्ष ४ | सारनाथ, फरवरी बु० सं० २४८२ ई० सं० १६३६ | अंक १०

आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग

यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग दुःख-निरोध की ओर ले जानेवाला है; जो है :—

१—सम्यक् दृष्टि
२—सम्यक् संकल्प } प्रज्ञा

३—सम्यक् वाणी
४—सम्यक् कर्मान्त
५—सम्यक् आजीविका } शील

६—सम्यक् व्यायाम
७—सम्यक् स्मृति
८—सम्यक् समाधि } समाधि।

भिक्षुओ ! निर्मल ज्ञान की प्राप्ति के लिए यही एक मार्ग है। और कोई मार्ग नहीं। इस मार्ग पर चलने से तुम दुःख का नाश करोगे। भिक्षुओ, अपने आप अपने दीपक बनो, अपनी ही शरण जाओ, किसी दूसरे की शरण नहीं। काम तो तुम्हें ही सिरे चढ़ाना है, तथागत तो केवल मार्ग बतला देनेवाले हैं।

भिक्षुओ, सम्यक् दृष्टि कौनसी होती है ? भिक्षुओ ! जिस समय आर्यश्रावक दुराचरण को पहचान लेता है, दुराचरण के मूल कारण को पहचान लेता है, सदाचरण को पहचान लेता है, सदाचरण के मूल कारण को पहचान लेता है, तब उसकी दृष्टि इस

कारण से भी सम्यक् दृष्टि, सीधी दृष्टि कहलाती है, उसकी इस धर्म में अचल श्रद्धा है, वह इस धर्म में आ गया है।

भिक्षुओ, दुराचरण कौन से हैं ?

१—जीव-हिंसा करना दुराचरण है
२—चोरी करना दुराचरण है
३—काम-भोग-सम्बन्धी मिथ्याचार दुराचरण है
} शारीरिक कृत्य।

४—झूठ बोलना दुराचरण है
५—चुगली करना दुराचरण है
६—कठोर बोलना दुराचरण है
७—फजूल बोलना दुराचरण है
} वाणी के कृत्य।

८—लोभ करना दुराचरण है
९—क्रोध करना दुराचरण है
१०—मिथ्या दृष्टि रखना दुराचरण है
} मन के कृत्य।

भिक्षुओ, दुराचरण का मूल कारण क्या है ? दुराचरण का मूल कारण लोभ है, दुराचरण का मूल कारण द्वेष है, दुराचरण का मूल कारण मोह है।

भिक्षुओ, सदाचरण कौन से हैं ?

१—जीव-हिंसा न करना सदाचरण है।
२—चोरी न करना सदाचरण है।
३—काम-भोग-सम्बन्धी मिथ्याचरण न करना सदाचरण है।
४—झूठ न बोलना सदाचरण है।
५—चुगली न करना सदाचरण है।
६—कठोर न बोलना सदाचरण है।
७—फजूल न बोलना स[illegible]ण है।
८—अलोभ सदाचरण है।
९—अद्वेष सदाचरण है।
१०—सम्यक् दृष्टि सदाचरण है।

भिक्षुओ, सदाचरण का मूल कारण क्या है ?

सदाचरण का मूल कारण लोभ का न होना है, सदाचरण का मूल कारण द्वेष का न होना है, सदाचरण का मूल कारण मोह का न होना है।

और भिक्षुओ, जो आर्यश्रावक दुःख को समझता है, दुःख के समुदय को समझता है, दुःख के निरोध को समझता है, दुःख के निरोध की ओर ले जानेवाले मार्ग को समझता है, वह इस समझ के कारण सम्यक् दृष्टि वाला होता है।

भिक्षुओ, यदि कोई कहे कि "मैं तब तक भगवान् बुद्ध के उपदेश के अनुसार नहीं चलूँगा, जब तक कि भगवान् बुद्ध मुझे यह न बता देंगे कि संसार शाश्वत है वा अशाश्वत, संसार सान्त है वा अनन्त, जीव वही है जो शरीर है वा जीव दूसरा है और शरीर

दूसरा, मृत्यु के बाद तथागत रहते हैं वा तथागत नहीं रहते हैं—तो भिक्षुओ, ये बातें तो तथागत के द्वारा बे-कही ही रहेंगी; और वह मनुष्य यों ही मर जायगा।

भिक्षुओ, जैसे किसी आदमी को जहर में बुझा हुआ तीर लगा हो। उसके मित्र, उसके रिश्तेदार उसे तीर निकालनेवाले वैद्य के पास ले जावें, लेकिन वह कहें कि मैं तब तक यह तीर नहीं निकलवाऊँगा, जब तक कि यह न जान लूँ कि जिस आदमी ने मुझे यह तीर मारा है वह क्षत्रिय है, ब्राह्मण है, वैश्य है वा शूद्र है;" अथवा वह कहे "मैं तब तक यह तीर नहीं निकलवाऊँगा जब तक यह न जान लूँ कि जिस आदमी ने मुझे यह तीर मारा है वह लम्बा है, छोटा है वा मँझले कद का है;" तो हे भिक्षुओ, उस आदमी को इन बातों का पता लगेगा ही नहीं, और वह यूँ ही मर जायगा।

भिक्षुओ, 'संसार शाश्वत है' ऐसा मत रहने पर भी, 'संसार अशाश्वत है' ऐसा मत रहने पर भी, 'संसार सान्त है' ऐसा मत रहने पर भी, 'संसार अनन्त है' ऐसा मत रहने पर भी, 'जीव वही है जो शरीर है' ऐसा मत रहने पर भी, 'जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है', ऐसा मत रहने पर भी, 'मृत्यु के बाद तथागत रहते हैं' ऐसा मत रहने पर भी, 'मृत्यु के बाद तथागत नहीं रहते', ऐसा मत रहने पर भी—जन्म, बुढ़ापा, मृत्यु, शोक, रोना-पीटना, पीड़ित-होना, चिन्तित होना, परेशान होना तो (हर हालत में) हैं ही, और मैं इसी जन्म में—जीतेजी—इन्हीं सबके नाश का उपदेश देता हूँ।

भिक्षुओ, जिस अज्ञ पृथग्जन ने आर्यों की संगति नहीं की, आर्य धर्म का ज्ञान प्राप्त नहीं किया, आर्य-धर्म का अभ्यास नहीं किया, सत्पुरुषों की संगति नहीं की, सद्धर्म का ज्ञान प्राप्त नहीं किया, सद्धर्म का अभ्यास नहीं किया, उसका मन, सत्काय-दृष्टि से युक्त होता हैं, वह यह नहीं जानता कि 'सत्काय-दृष्टि' पैदा होने पर, उससे किस प्रकार मुक्त हो जाता है। उसकी 'सत्काय-दृष्टि' दृढ़ होकर उसको पतन की ओर ले जाने-वाला बन्धन बन जाती है। उसका मन विचिकित्सा से युक्त होता है......उसका मन 'शील-व्रत-परामर्श' से युक्त होता है......उसका मन काम-वासना से युक्त होता है...... उसका मन क्रोध से युक्त होता है......उसका क्रोध दृढ़ होकर उसे पतन की ओर ले जानेवाला बन्धन बन जाता है।

(अपूर्ण)

हीनयान और महायान का भेद

(लेखक—'महापण्डित' 'त्रिपिटकाचार्य्य', भिक्षु श्री राहुल सांकृत्यायन)

'महायान' और 'हीनयान' यह शब्द प्रारम्भ में इन सम्प्रदायों के लिए नहीं प्रयुक्त होते थे। 'हीनयान' का अर्थ है 'छोटा रथ' या 'छोटा मार्ग'। यह उपाधि महायान

के विरोधी निकायों को, जो कि संख्या में अठारह थे और जो बौद्धधर्म के प्रारम्भिक निकाय थे, दी गई थी। इस शब्द को प्रचलित होने में शताब्दियाँ लग गईं। लेकिन आजकल बौद्ध-धर्म का प्राचीन रूप 'हीनयान' ही समझा जाता है। इसी प्रकार महायान भी इस नये निकाय का नाम नहीं माना जाता था। ये दोनों नाम आपस के सम्बन्ध के कुछ कडु आपन को प्रकट करते हैं। इसी लिए मैं उचित समझता हूँ कि इन शब्दों के बजाय दूसरे शब्द इस्तेमाल किये जायँ। मैं समझता हूँ कि इसके लिए सबसे उचित शब्द **'प्राचीन बौद्ध-धर्म'** और **'विकसित' बौद्ध-धर्म** हैं। परन्तु यहाँ पर पाठकों की सुविधा के लिए मैंने वे ही शब्द रखे हैं।

संसार में कई प्रकार के मनुष्य पाये जाते हैं। प्रथम वे जो बुद्धिवादी (Rational) हैं और केवल कारण को मानते हैं। वे आपका विश्वास तब तक नहीं करेंगे जब तक आप उनके तर्कों का समाधान न कर दें। दूसरे वे लोग हैं जो कारण के लिए कोई परवाह नहीं करते। वे लोग भाव-प्रधान (Emotional) होते हैं। उनके चित्त में यदि कोई बात जम जाती है तो वे उस पर विश्वास करते हैं और उसका पालन करते हैं। थोड़े में, संसार में बुद्धिवादी (Rational) और भाव-प्रधान, (Emotional) दो प्रकार के मनुष्य पाये जाते हैं। एक ही तरह का धर्म या विश्वास सबको सन्तुष्ट नहीं कर सकता। हम किसी एक धार्मिक विचार में इस विभिन्नता के मुताबिक अन्तर देखते हैं। इसलिए, बौद्धधर्म में भी इसका होना स्वाभाविक था। भगवान् बुद्ध ने दोनों प्रकार के मनुष्यों का ध्यान रखा। प्राचीन बौद्ध-धर्म में भी, जो कि हीनयान कहाता है, दो प्रकार के उपदेश हैं—एक जन साधारण के सन्तोष के लिए और दूसरे बुद्धिवादियों के लिए। इस दशा में भगवान् बुद्ध के उपदेश का ढङ्ग बिलकुल भिन्न था। पाली त्रिपिटक के प्रसिद्ध सूत्रों में से एक में भगवान् बुद्ध ने दिखलाया है कि किस प्रकार भिन्न भिन्न प्रकार के मनुष्यों को उपदेश देने के लिए भिन्न भिन्न ढङ्ग और उपाय होने चाहिए।

अब मैं आपको एक मिसाल देता हूँ। एक छोटा बच्चा एक हाथी के खिलौने से खेल रहा है—चूँकि उसने असली हाथी कभी नहीं देखा है, इसलिए वह उसी को हाथी मानता है। एक युवा पुरुष उसके भ्रम को देखता है और उसको असलियत बतलाना चाहता है—तब उसको क्या करना चाहिए? सबसे अच्छा तरीका यह है कि उस बच्चे की बुद्धि को भी अपनी तरह ही बढ़ने दिया जाय। लेकिन, यह कभी उचित नहीं है कि बच्चे के हाथ से हाथी का खिलौना छीनकर तोड़ दिया जाय। उसी प्रकार से बौद्ध-धर्म में भी प्रारम्भ से ही कुछ कम बुद्धिवाले लोगों के मानसिक सन्तोष के लिए स्थान है।

उदाहरणार्थ, तमाम देवतागण, जो कि पाली और चीनी (तथा अन्य) त्रिपिटकों में पाये जाते हैं, उन पर भगवान् बुद्ध का विश्वास नहीं था। बल्कि उनके समय के हिन्दुस्तानी जन-समुदाय उनको मानते थे। इनमें से अधिकांश झूठे और आधुनिक भूविद्या के विरुद्ध हो सकते हैं। यह सम्भव है कि इनमें से कुछ प्राचीन बौद्धों को मालूम थे लेकिन वे आम मानसिक वृत्ति को धक्का नहीं पहुँचाना चाहते थे।

इसलिए उन देवताओं के अस्तित्व के विरुद्ध कुछ नहीं कहा गया। लेकिन भगवान् बुद्ध ने अत्यन्त बुद्धिमानी से उनके अस्तित्व (Status) को घटाकर एक सिद्धान्त बनाया कि प्राणि-मात्र का जन्म तथा नाश उसके कर्मों के अनुसार होता है। यह विचार भगवान् बुद्ध के पहले ज्ञात नहीं था। क्योंकि प्राचीन देवता बिलकुल विभिन्न थे। वे अमर समझे जाते थे। जैसे-जैसे बौद्ध-धर्म दूसरे-दूसरे देशों में फैला, वहाँ भी उनको उसी प्रकार के विश्वास मिले और उन्होंने भी वही भाव धारण किया। यही दशा और देशों, जैसे तिब्बत, चीन, बर्मा आदि में हुई। उनके बहुत से ग्राम-देवता और दूसरे जन-समुदाय से पूजे जानेवाले देवता थे। इसलिए उनको अपने प्रिय देवता से अलहिदा करना उचित नहीं था। क्योंकि निर्बल विचारवाले ही अपने दुखों में सहायतार्थ देवताओं के पास जाते हैं। और यदि यह थोड़ी सी सहायता भी उनसे छीन ली जाती तो वे नाराज हो जाते।

मैंने इसका उल्लेख इसलिए किया है, कि हीनयानों में से कुछ लोग कहते हैं कि महायान ने हजारों देवता, धार्मिक क्रियायें और बलि आदि की प्रथायें उत्पन्न कर दी हैं; जोकि भगवान् बुद्ध के असली उपदेशों में कहीं नहीं पाये जाते हैं। मैं इन दोनों निकायों के जन साधारण के आम रिवाजों में अधिक अन्तर नहीं देखता। जन साधारण अपनी कठिनाइयों के समय कुछ दैविक सहायता चाहते हैं और हालाँकि हीनयानियों ने महायानियों की तरह नये देवताओं की उत्पत्ति नहीं की परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि वे अपने स्थान के जन साधारण को नये नये देवता बढ़ाने से रोक सके हैं।......... आप देखेंगे कि बहुत से सिंहली हीनयानी लोग ब्राह्मण देवता विष्णु और दूसरे देवताओं की पूजा करते हैं। बर्मा और स्याम में असंख्य देवताओं की पूजा होती है। ये सब प्राचीन बौद्ध धर्म के लिए नये हैं। इनके नाम प्राचीन पाली त्रिपिटक में कहीं भी नहीं पाये जाते हैं। इसलिए अगर महायान को नये देवताओं की खोज करनी पड़ी थी तो वह इसीलिए कि आम लोगों को उसकी आवश्यकता थी। इसलिए यह कहना कि चूँकि महायान सम्प्रदाय ने बहुत से देवताओं की उत्पत्ति की इसलिए यह भगवान् बुद्ध के असली उपदेशों के विरुद्ध जाता है, ठीक नहीं है। अगर यह कोई पाप है तो दोनों पापी हैं। इसके अलावा हीनयानी कहते हैं कि महायानी सूत्र ऐतिहासिक आधार के विरुद्ध है। वे कपोल-कल्पित कथाओं की तरह हैं जो कि देवताओं और राक्षसों की कहानियों से भरी हुई हैं। और कोई भी बुद्धिवादी उनके ऐतिहासिक बुद्ध के उपदेश नहीं मान सकता। परन्तु यहाँ भी अन्तर केवल श्रेणी का है। आप लोगों को यही समझना चाहिए कि हीनयान प्राचीन बौद्ध-धर्म है और, महायान का अर्थ है विकसित बौद्ध-धर्म—जैसे कि मैं पहले कह चुका हूँ। विकसित का यहाँ अर्थ है प्राचीन में कुछ नया जोड़। इसलिए महायानी इसे इन्कार नहीं कर सकते कि हीनयानी सूत्र ऐतिहासिक बुद्ध के उपदेश हैं।.........हीनयानी लोग जो यह चार्ज महायानियों पर लगाते हैं कि उनका साहित्य कपोल-कल्पित कथाओं आदि से भरा है उसके जवाब में महायानी लोग भी कुछ हीनयानी सूत्र को वैसा ही बतला सकते हैं, तो हालाँकि कम संख्या में; क्योंकि पाली त्रिपिटक में जोड़ना-घटाना बहुत ही पहले बन्द हो चुका था।

पवित्र बोधिवृक्ष के नीचे मार की लड़ाई क्या है? क्या सचमुच राक्षस मार काले हाथी पर चढ़कर बोधिसत्व से लड़ने आया था? क्या उसके पास दुश्मन से लड़ने के लिए फ़ौज थी? वहाँ मार का अर्थ बुरा विचार है। लेकिन इस बुरे विचार का नाश कहानी के रूप में दिखलाया गया था, जिसने कि जनसाधारण को अधिक आकर्षित किया। उन्होंने इसको बुद्ध और मृत्यु के राजा मार के बीच की असली लड़ाई समझा। यह मार-कहानी असल में हीनयानियों ने ही गढ़ी थी। यह महायानियों की गढ़न्त नहीं है। आप इसी तरह की बहुत सी मिसालें हीनयानियों के साहित्य में पायँगे, जहाँ कि आमतौर की आवश्यकताओं की पूर्ति की गई है। इसलिए हम महायान सूत्रों को उसी अपराध के लिए, जो कि हीनयान सूत्रों में पाया जाता है, दोषी नहीं ठहरा सकते।

इस तुलना से मेरा तात्पर्य यह दिखलाने का है कि नये-नये देवता और कपोल-कल्पित सूत्र दोनों ही सम्प्रदायों के धर्म-पुस्तकों में पाये जाते हैं। इस बुनियाद पर एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय को बुरा नहीं कह सकता। जन-साधारण हमेशा साधारण कहानियाँ, जो कि एक दम असंभव सी होती हैं, पसन्द करता है। आप जानते हैं कि इस तरह की कहानियाँ अपरिपक्व बुद्धिवाले को शिक्षित करने के लिए अच्छी होती हैं। आज हमारे स्कूलों में इस प्रकार की सैकड़ों कहानियाँ पढ़ाई जाती हैं, जिनमें बच्चे बहुत आनन्द लेते हैं; और उनसे बहुत अच्छे अच्छे परिणाम निकलते हैं। परन्तु कोई इन कहानियों को इसलिए बेकार नहीं कह सकता है कि वे असली ऐतिहासिक आधार पर नहीं हैं। इसी प्रकार हीनयानियों के त्रिपिटक में या महायानियों के धर्म-ग्रन्थों में बहुत से ऐसे सूत्र हो सकते हैं जो कि ऐतिहासिक नहीं हैं। परन्तु यदि वे मनुष्य को अपने जीवन सुधारने में या कठिनाइयों के समय में मस्तिष्क को शान्त करने में सहायता देते हैं (और निश्चय ही उनमें से अधिकांश ये विशेषतायें रखते हैं) तो उन्हें कूड़ा कर्कट नहीं समझना चाहिए।

परन्तु, ये सब अन्तर बाहरी हैं। अब हम उनके भीतर की बातों पर दृष्टि डालें। क्या हीनयान और महायान के मूल तत्वों में कोई अन्तर है? बौद्ध-धर्म के सिद्धान्तों में से सबसे मौलिक सिद्धान्त अनात्मवाद है; अर्थात्, अस्थायी होनेवाला नियम बिला किसी अपवाद के हर वस्तु के लिए लागू होता है। इसलिए शरीर के अन्दर एक अमर आत्मा होने की कोई सम्भावना नहीं है। अनात्मवाद का सिद्धान्त महायानी भी मानते हैं जिन्होंने इसके लिए बहुत से कारण दिये हैं। पाँचवीं शताब्दी में वसुबन्धु के समय से लेकर रत्नाकर शान्ति यानी ग्यारहवीं सदी तक महायानियों ने इस विषय पर बहुत से ग्रन्थ लिखे। इस प्रकार आप हीनयानियों के तमाम मौलिक तत्वों को एक एक कर ले सकते हैं। .... उन सबको आप देखेंगे कि महायानी विद्वानों ने समर्थन किया है। चार आर्य सत्य, आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग, कर्म-प्रतिफल (Karmic Retribution) उन्हें दोनों मानते हैं। तब उनमें मौलिक अन्तर कहाँ रह जाता है? महायान विद्वानों ने जब देखा कि ब्राह्मण विद्वान् भगवान् बुद्ध के कुछ उपदेशों का खण्डन करते हैं तो वे आगे बढ़े और अपने उत्तम तर्कों द्वारा विपक्षियों को हराया। शायद स्याम, बर्मा और लंकावाले स्थविरवादी उन कठिनाइयों को नहीं जानते हैं जिनका सामना हिन्दुस्तान में करना पड़ा था। प्रतिद्वन्द्वी

दार्शनिक हिन्दुस्तानी संस्थाओं ने (Schools) तर्कशास्त्र के साहित्य के बहुत बढ़ाया था, और इसके पहले कि आप उनको शान्त कर सकें उनके विचारों पर प्रभाव डालना असम्भव है। एक ऐसे देश में जहाँ कि आत्मा के विषय में एक मामूली विचार है, थोड़े से शब्दों में बता देना कि आत्मा अमर नहीं है, कोई मुश्किल बात नहीं है। परन्तु, हिन्दुस्तान में ब्राह्मणों ने केवल इसी विषय पर बहुत बड़ा साहित्य तैयार किया है, और वही जो कि उनके सिद्धान्तों को जानता है, अनात्मवाद की उत्तमता से मुकाबला कर सकता है। अगर हम लोग अपने हिन्दुस्तानी महायान विद्वानों के कार्यों को छोड़ देते हैं तो फिर विरोध पक्ष के सामने अपना विषय रखने के लिए हमारे पास कुछ भी नहीं रह जाता है।

इसलिए, जहाँ तक उच्चतम श्रेणी के दार्शनिक विचारों से सम्बन्ध है, हीनयान और महायान झूठा नाम है। उनके दो पृथक्-पृथक् सिद्धान्त नहीं हैं। अब एक बात और समझानी है। महायानी, हीनयानी पर यह दोषारोपण करते हैं कि उन्होंने व्यक्ति के सामने व्यक्तिगत मुक्ति को रखकर आदर्श को बहुत गिरा दिया है और महायानी व्यक्तिगत मुक्ति की परवाह नहीं करते। वे कहते हैं कि जब तक सभी प्राणी दुःखों से छुटकारा नहीं पा लेते, तब तक हम लोगों को आत्म-मुक्ति की कोशिश नहीं करनी चाहिए। हम लोगों का कर्त्तव्य अपने दुखी साथियों की सहायता करना है। पर वे सोचते हैं कि ऐसा ऊँचा आदर्श हीनयानियों के धर्म-ग्रन्थों में नहीं हैं। लेकिन यह गलत है। हीनयानियों की ५५० जातक कथायें केवल इसी उच्च आदर्श को बतलाती हैं। जातक कथाओं के बिलकुल प्रारम्भ में ही हम सुमेध को दूसरों के सहायतार्थ अपने निर्वाण को छोड़ते हुए पाते हैं। वह गरीबों की मदद के लिए हर प्रकार के बलिदान करता है। वह एक भूखे चीते को बचाने के लिए शरीर त्याग देता है। इसी प्रकार के बहुत से उदाहरण इन कथाओं में पाये जाते हैं। इससे प्रकट होता है कि हीनयानियों ने बोधिसत्व के इस ऊँचे आदर्श से कभी इन्कार नहीं किया।

अगर ऐसा है तो यह कहना कि हीनयानी अपने व्यक्तिगत मोक्ष के लिए बड़े स्वार्थी हैं, ठीक नहीं। अन्तर केवल इतना ही है कि महायानी लोग कहते हैं कि निर्वाण के लिए सिर्फ एक रास्ता है, और वह असंख्य पीड़ितों को ऊँचा उठाकर बुद्धत्व प्राप्त कराना है; जब कि हीनयानी लोगों का ख्याल अपने दुखों से अति शीघ्र छुटकारा पाना है; और वे श्रावक या 'प्रत्येक' का मार्ग ग्रहण कर सकते हैं—जिसका अर्थ है व्यक्तिगत मोक्ष। लेकिन कोई भी हीनयानी यह नहीं कह सकता कि यह आदर्श बोधिसत्व-आदर्श के समान है। इस प्रकार, उनके जीवन के आदर्शों में भी अधिक अन्तर नहीं है। अब वह समय नहीं है कि उन पर अधिक जोर दिया जाय। उन दिनों कुछ ऐसे कारण रहे होंगे जिससे कि इन अन्तरों को सम्मुख रखा गया था। लेकिन अब हमको निष्पक्ष-रूप से विचार करना चाहिए और बैाद्धधर्म के भिन्न भिन्न सम्प्रदायों में से उत्तम बातों को ग्रहण करना चाहिए। बहुत से गुण जो कि हीनयानी त्रिपिटक में हैं जिन्हें महायानियों को ग्रहण करना चाहिए और इसी प्रकार महायानियों के गुणों को हीनयानियों को ग्रहण करना चाहिए। उदाहरणार्थ, एक समय था जब कि लोग उस जीवनी को जो कि

बिना बहुत से चमत्कारों तथा दैवी वर्णन के कही जाती थी—अधिक पसन्द नहीं करते थे। लेकिन अब बुद्धि का युग है। लोग अब अपने गुरु के विषय में अधिक बुद्धिवादी कहानियाँ चाहते हैं और यदि आप असली ऐतिहासिक बुद्ध का पता लगाना चाहते हैं तब आपको हीनयानी धर्मग्रन्थों का अवलोकन करना होगा। उनमें आपको बुद्ध मनुष्य के रूप में मिलेंगे। एक अरक्षित भिक्षु किसी भयानक रोग से ग्रसित है, भगवान् बुद्ध उसको देखते हैं। वे अपने हाथों से उसके शरीर को साफ करते हैं और फिर उसको अपने बिस्तर पर लेटाते हैं। इस प्रकार के बहुत से उदाहरण बुद्ध की जीवनी में हैं। अगर चमत्कारों और दैवी बातों को छोड़कर ये सब इकट्ठे किये जायँ तो आप बुद्ध का आचरण अधिक उत्तम पायँगे।

इस विषय में महायानी सूत्र पिछड़ जाते हैं। इसलिए बुद्ध का यह मानवी चरित्र (Human element) हीनयानी धर्म ग्रन्थों से पूर्ण किया जा सकता है। महायान ने उच्च दार्शनिक-नागार्जुन और असङ्ग दिये हैं। उन्होंने बुद्ध के असली विचारों को भली भाँति दरसाया है। उन्होंने असली विचारों से कुछ अधिक नहीं किया है बल्कि उन्हीं का समर्थन करके उनको अधिक साफ कर दिया है। कभी कभी भगवान् बुद्ध कहते हैं कि मेरे तमाम उपदेश एक बेड़े के समान हैं। उनसे पार करना है न कि उन्हें पकड़े रहना। इस प्रकार की उपमाओं को लेकर महायानी विद्वानों ने धर्म को समझाने के लिए बहुत से सिद्धान्तों (Theories) का निर्माण किया। इस बात के समाधान करने की आवश्यकता है कि भगवान् बुद्ध और नागार्जुन के दार्शनिक-विचार (Philosophy) भिन्न अथवा प्रतिद्वन्द्वी सिद्धान्त के क्यों नहीं हैं। उसकी अधिक व्याख्या करने से विषय अधिक पारिभाषिक (Technical) हो जायगा। नागार्जुन के दार्शनिक विचारों के अनुसार वस्तुओं की स्थिति केवल एक दूसरे के सम्बन्ध पर निर्भर है। जैसे ठण्ढा और गरम, अँधेरा और उजेला, छोटा और बड़ा। इस छोटी सी विधि (Formula) का उसने हर स्थान पर प्रयोग किया। अवश्य ही यह विचार हीनयान सम्प्रदाय के कट्टर उपदे[illegible] के विरुद्ध नहीं जाता। जब संसार में प्रत्येक वस्तु क्षणिक है और कुछ भी अमिट (स्थायी) नहीं है तब हम किसी वस्तु की कीमत केवल उसके सम्बन्ध से जानते हैं। इसलिए इन वस्तुओं का सम्बन्ध उस असली सार्वभौमिक क्षणिकता के सिद्धान्त का शेष सिद्धान्त है।

असंग की योगाचार संस्था बौद्धदर्शनशास्त्र के लिए एक दूसरा दान है। यह एक बहुत ही गम्भीर और उच्च कोटि का दर्शन है, जो कि अब भी बड़े बड़े ब्राह्मण विद्वानों के विचारों को उत्तेजित (Inspires) करता है। इसी संस्था से हिन्दुस्तान की आधुनिक वेदान्ती संस्था (School) निकली है। इसी संस्था ने वसुबन्धु, दिङ्नाग, धर्मकीर्ति तथा अन्य बहुत से दार्शनिक पैदा किये। इस संस्था का मुख्य ग्रन्थ विज्ञानपतिशास्त्र है जो कि अपने भाष्य (Commentary) के साथ चीनी अनुवाद में पाया जाता है। यह एक ऐसा प्रसिद्ध ग्रन्थ है कि संस्कृत में इसका पुनरुद्धार होना बहुत आवश्यक है। मैंने इसका फ्रेंच अनुवाद भी देखा है। मैं उसी फ्रेंच अनुवाद से इसका पुनरुद्धार करना चाहता था, परन्तु उस भाषा के विद्वानों से

मदद न पाने के कारण मैं उसको शुरू न कर सका। भाग्यवश मेरे स्वर्गीय मित्र 'वाङ्ग मो ल' (शंघाय के "चीनी बौद्ध" के भूतपूर्व सम्पादक) लङ्का आये और मेरे साथ ठहरे और आपस की मदद से कुल किताब का कुछ मामूली अनुवाद किया। श्रीवाङ्ग ने अपनी किताब का पहला अध्याय छपवाया। उनका अनुवाद बहुत ही ठीक तथा प्रवाह-पूर्ण है। यह "चीनी बौद्ध" के विशेषांक के रूप में छपा था। श्रीवाङ्ग से हम लोगों को बहुत आशा थी। परन्तु शोक! वे अपनी महत्त्वाकांक्षा को पूर्ण करने के लिए जीवित न रह सके। मेरे अनुवाद का आधा दोहराया जा चुका था और किताब का आधा भाग संस्कृत में छप चुका है। शेष आधा मुझे पूरा करना है।

यदि दोनों संस्थाओं में कुछ अन्तर है तो बहुत ही छोटी-छोटी बातों में है। वे यदि कुछ मूल्य रखती हैं तो उन्हीं लोगों के लिए जो कि सच्चे और ऊँचे सिद्धान्तों को नहीं समझ सकते। दार्शनिक विचारों से वे दोनों असल में एक ही हैं।

("Buddhism in England" से अनूदित)

— अनुवादक, कृष्णस्वरूप सक्सेना (महाबोधिविद्यालय)

भारतीय महाबोधि सभा की छियालीसवीं बैठक

२० दिसम्बर सन् १९३८ बृहस्पतिवार को कालेज स्क्वायर में भारतीय महाबोधी सभा की छियालीसवीं बैठक हुई। सर मन्मथनाथ मुकरजी की अनुपस्थिति के कारण सभा श्रीमान् राजा हेवावितरन की अध्यक्षता में हुई।

प्रधान मन्त्री ने सालाना रिपोर्ट तथा हिसाब का लेखा पढ़कर सुनाया जिसकी स्वीकृति तुरन्त ही प्रदान की गई। लङ्का से आये हुए बहुत से सदस्यों ने इस सभा में भाग लिया।

इस वर्ष के लिये निम्नांकित पदाधिकारी निर्वाचित किये गये:—

संरक्षक:—

१—बड़ोदा नरेश, २—भूटान नरेश, ३—शिकम नरेश, ४—सेठ जुगलकिशोरजी बिड़ला।

सभापति

सर मन्मथनाथ मुकरजी।

उपसभापति

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, जापानी राजदूत, चीनी राजपूत हीरेन्द्रनाथ दत्त।

सीनेटर श्री उथ्विन।

प्रधान मन्त्री तथा कोषाध्यक्ष:—

देवप्रिय वलीसिंह

उपमन्त्री

भिक्षु संघरत्न

निम्नाङ्कित प्रस्ताव पास किये गये--

१--सरकार की इस उपेक्षा पर सभा खेद प्रकट करती है कि उसने बौद्धों के परम पवित्र मन्दिर बुद्धगया पर उनका अधिकार देने पर कुछ भी विचार नहीं किया। यह प्रश्न प्रान्तीय सरकार के हाथ में है। कांग्रेस के नेताओं ने कहा था कि अपनी शक्ति-सङ्गठन के पश्चात् वे इस प्रश्न पर अवश्य विचार करेंगे। इस समय वे ही सरकार के इन प्रधान पदों को सुशोभित कर रहे हैं, अतः हम बिहार की कांग्रेस सरकार से इस बात के लिये प्रार्थी हैं कि वह उक्त मन्दिर को एक बौद्ध-कमेटी के हाथ में सौंप दे।

२--यह सभा इँगलैण्ड की महाबोधि सभा के इस कथन का अनुमोदन करती है कि भगवान् बुद्ध के दो शिष्यों, सारिपुत्त और मोग्गल्लान की अस्थि एलबर्ट तथा विक्टोरिया अजायबघर में हैं, वे लन्दन के मठ को दे दिये जाँय। यह सभा आशा करती है कि इँगलैण्ड की सरकार ने भारतवर्ष में पाये गये भगवान् बुद्ध के स्मृतिचिह्न को बौद्धों को दे देने में जिस नीति का अनुसरण किया था, उसी नीति का अनुसरण वह इन शिष्यों के स्मृतिचिह्न के प्रति भी करेगी।

३—हिन्दू तथा बौद्ध दोनों भगवान् बुद्ध का जन्म-दिवस मनाते हैं। अतः यह सभी प्रान्तीय सरकार, डिस्ट्रिक्ट तथा म्युनिसिपलबोर्ड से प्रार्थना करती है कि वे वैशाख पूर्णिमा को सार्वजनिक त्योहार उद्घोषित कर दें।

४—भूतपूर्व श्रद्धेय देवमित्र धर्मपालजी ने कलकत्ता में श्रीधर्मराजिक बिहार की स्थापना की, तथा लोगों के जीवन को आध्यात्मिक उन्नति प्रदान करने के लिये चौवालीस वर्ष तक अविरल प्रयत्न किया, अतः यह सभा कलकत्ता-समिति से प्रार्थना करती है कि वह वहाँ की किसी एक सड़क को धर्मपाल का नाम प्रदान करे।

५—उत्तरी भारत में बौद्ध धार्मिक यात्रियों की सुविधा के लिये प्रान्तीय सरकार फण्ड की सहायता प्रदान करे।

६—यह सभा राजा बलदेवदास तथा सेठ जुगलकिशोर बिड़ला को उनके विशाल दान के लिये हृदय से धन्यवाद देती है।

७—मालाबार के प्रधान बौद्ध नेता मि० सी० कृष्णन की मृत्यु से जो महान् क्षति हुई उसकी पूर्त्ति नहीं की जा सकती। हम लोग उनके दुखी परिवार के प्रति हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हैं।

"धर्म-दूत" के प्रेमियों से

भगवान् बुद्ध के उपदेश भारत की संसार को देन है। उन्हीं के कारण आज भारत संसार का धर्मगुरु कहलाता है। लेकिन स्वयं हम भारतवासी उससे सुपरिचित क्या, अपरिचित हैं। अपने देशवासियों की इस कमी को पूरा करने के लिये, भगवान् बुद्ध के वचनामृत उन तक पहुँचाने के लिये "धर्मदूत" का जन्म हुआ है। क्या इसके प्रेमी इस कार्य में इसकी सहायता करेंगे। जो पाठक डाक व्यय आदि के लिये ।।) आठ आने भेजकर उसके ग्राहक बन गये हैं उन तक धर्मदूत नियम से पहुँचता रहेगा। लेकिन, वह अनेक उन पाठकों तक भी पहुँचता है और पहुँचना चाहता है जो "धर्मदूत" से अपरिचित होने अथवा अन्य किसी कारण से उसके ग्राहक नहीं हैं। 'धर्मदूत" के संचालकों पर उसको प्रतिमास छापने का काफी आर्थिक भार है। अधिक भार सहन करने में वे असमर्थ हैं। इतना होते हुए भी इस वर्ष भगवान् बुद्ध के जन्म, उनके ज्ञान का जन्म और उनका अन्तिम दिन वैशाख पूर्णिमा को "धर्मदूत" का नववर्षाङ्क निकलने जा रहा है। क्या हम आशा करें कि "धर्मदूत"-प्रेमी अपने परिचितों को "धर्मदूत" से परिचय कराके, डाक व्यय आदि के लिये उनसे ।।) वार्षिक भिजवा कर, अथवा स्वयं यथेष्ट कुछ दान देकर "धर्मदूत" प्रकाशन विभाग की सहायता करेंगे ?

व्यवस्थापक
"धर्मदूत"
सारनाथ

रजिस्ट्री की संख्या ए २७९६३

हमारी नजरों में

"उदानः"—उदान त्रिपिटक का ही एक छोटा किन्तु बड़ा ही रोचक और उपदेशपूर्ण ग्रन्थ है। सूत्रपिटक के खुद्दक निकाय में कुल पन्द्रह ग्रन्थ-रत्न हैं—जिनमें उदान भी एक है। सारा ग्रन्थ आठ वर्गों में विभक्त है। प्रत्येक वर्ग के नाम अलग अलग है—यथा बोधिवर्ग, नन्दवर्ग आदि। इसमें भगवान् के कुल ७९ उपदेश हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ पाली (मागधी) से हिन्दी में अनुवाद किया गया है। सुन्दर और बोधगम्य अनुवाद के लिए अनुवादक श्री भिक्षु जगदीश काश्यप एम० ए० का नाम ही काफी है। प्राचीन भाषा से चलती जबान में अनुवाद करना कितना कठिन होता है यह सभी कोई जानते हैं। फिर भी, अनुवादक की विद्वत्ता और चेष्टा ने इसे अतीव सरल कर दिया है। प्राक्कथन में ग्रन्थ का परिचय देते हुए अनुवादक ने लिखा है "भावातिरेक से कभी-कभी जो सन्तों के मुँह से प्रीति-वाक्य निकला करता है, उसे 'उदान' कहते हैं। इस ग्रन्थ में भगवान् बुद्ध के ऐसे ही उदान-वाक्यों का संग्रह है। भव-बन्धन से मुक्त अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध के यह उदान बड़े ही हृदय-ग्राही तथा मर्मस्पर्शी हैं। उदान-वाक्यों के पहले उन कथाओं तथा घटनाओं का उल्लेख आता है, जिस अवसर पर ये वाक्य कहे गये थे। इससे उदानों का अर्थ बड़ा स्पष्ट और सरल हो जाता है। इन उदानों में बौद्ध दर्शन के सभी अङ्गों पर बड़ा सुन्दर प्रकाश डाला गया है।"

हमारी दृष्टि में ग्रन्थ पठनीय है। पुस्तकालयों के लिए यह संग्रहणीय है। छपाई और कागज सुन्दर है। दाम १) है। प्राप्ति-स्थान—महाबोधि पुस्तक-भण्डार, सारनाथ, बनारस।

"विप्लव" (मासिक पत्र), सम्पादक—यशपाल, गणेशगञ्ज, लखनऊ से प्रकाशित। वार्षिक मूल्य ४।।), एक प्रति का ।=)।

पत्र युग का सन्देश-वाहक है। छपाई, आकार-प्रकार सभी कुछ सुन्दर है। हिन्दी में यह अपने ढङ्ग की अनोखी चीज है।

पत्रिका के इस अंक में निम्न लेख पठनीय है—समाजवाद और धर्म, सोवियट रूस के खूनी मुकद्दमे, समाजवाद और नैतिकता, मार्क्सवाद की पाठशाला, आप बीती आदि।

रूस के खूनी मुकद्दमे के सम्बन्ध में संसार में और विशेषकर हमारे देश में साम्राज्यवादी संस्थाओं द्वारा जो भ्रम फैलाये जाते हैं—उसका कुछ अंश तक इस लेख में निवारण करने की चेष्टा की गई है।

हमें आशा और विश्वास है कि हिन्दी के पाठक इस सुन्दर पत्रिका का हृदय से स्वागत करेंगे। पत्रिका का फर[illegible] का अंक प्रसिद्ध क्रान्तिकारी शहीद चन्द्रशेखर आजाद के नाम से "आजाद-अंक" होगा। इस अंक में उन्हीं के विषयक लेख होंगे। मार्च का अंक "लाहौर-षड्यन्त्र अंक" होगा।

"साहित्य-सन्देश" (मा० पत्रिका), सम्पादक गुलाबराय एम० ए० और महेन्द्र, पता—साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा, वा० मू० २); विद्यार्थियों, शिक्षा-संस्थाओं और पुस्तकालयों के लिए १)।

अपने रूप में पत्रिका अच्छी है। साहित्य के आरम्भिक छात्र के लिए पठनीय है। आशा है साहित्य-प्रेमी "साहित्य-सन्देश" को जनसाधारण तक पहुँचाने की चेष्टा करेंगे।

(सुमन)

प्रकाशक—धम्मजोति, महाबोधि-सभा, सारनाथ, बनारस।
मुद्रक—धम्मजोति, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, बनारस-ब्रांच।

धर्म-दूत

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्स
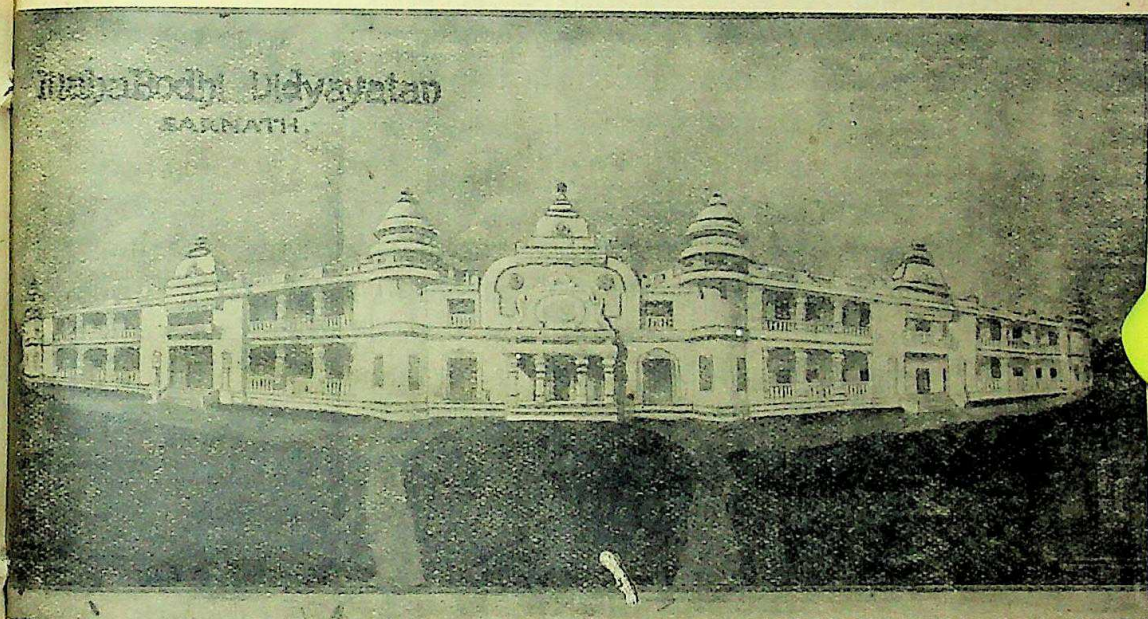
महाबोधि विद्यालय-भवन

इसका चौथा भाग बनकर तैयार हो रहा है। इसी में आज-कल स्कूल लगता है।

वर्ष ४
अंक ११

फाल्गुन पूर्णिमा बु० सं० २४८२ / वि० सं० १९९५

वार्षिक मूल्य ||)

विषय-सूची

महाबोधि विद्यालय-भवन-निर्माण के लिये दान

महाबोधि विद्यालय का अभी तक अपना कोई भवन न रहने के कारण विद्यालय के लगभग २५० छात्र धर्मशाला, भिक्षु-विहार तथा नीम वृक्ष के नीचे शिक्षा पा रहे थे। महाबोधि सभा ने इस भवन-निर्माण के कार्य को अपने हाथ में लिया और अभी पाँच कमरे बनकर तैयार हो गये हैं। किन्तु, अर्थाभाव के कारण सम्पूर्ण भवन अभी नहीं तैयार हो सका है। निम्नलिखित सज्जनों ने अभी तक भवन-निर्माण के लिए निम्न रकम प्रदान की है। आशा है, दूसरे विद्याप्रेमी भी इसका अनुकरण करेंगे।

यू० सा० मांग बर्मा	५)	सेनेटर उ० ध्वीन, बर्मा	१८००)
उपेन्द्रलाल बरुआ, चटगाँव	१)	सूरजमल पोद्दार फंड	५०)
भिक्षु श्री धम्मखेत्तो जी, जर्मनी	१०)	आर० टकाकाशी, जापान	१३॥=)
आर० एम० किरीहामी उपासक	५)	श्री उमेशचन्द्र मुतसुद्दी, चटगाँव	६)
एस० सुन्दर०, पूना	१००)	श्री जयचन्द्रजी विद्यालङ्कार, काशी	२॥)
डब्लू० पी० अप्पुहामी, लङ्का	५)	पं० उदयनारायण तिवारी, प्रयाग	१)
एच० ई० पेरेरा ,,	५)	श्री बच्चन सिंह, सारनाथ	१)
जी० पी० डेविड सिल्वा ,,	५)	श्री सेठ सन्तलाल जी, बर्मा	५१)
राजकुमार लाल, राँची	१०)		

भिक्षु श्री नागार्जुन का वक्तव्य

बुलहवा के बाबा पर जो मुकद्दमा चल रहा था, आज २॥ महीने के बाद उसका फैसला हो गया। उसके मुताबिक बुलहवा-बाबा (महन्त) और मस्तराम (ज्ञानदास) को नौ-नौ महीने की, एवं जमींदार के मैनेजर—भगवतीप्रसाद, जो कि बाबा का प्रधान सहायक था—को ६ महीने की सजा हुई है। प्रत्येक को पचास-पचास रुपये जुर्माना भी हुआ है। जज ने वसूल होनेवाली जुर्माने की रकम में से ५०) मुझे देने की बात भी अपने फैसले में लिखी है। तदनुसार जो ५०) मिलेंगे, मैंने निश्चय किया है कि उस रकम को जरनैली, धनहा (चम्पारन) में कुआँ बनाने में खर्च करूँगा—जिसके लिए मुझ पर बेंत पड़े थे। उक्त रकम मिले या नहीं, उस गाँव में कुआँ खुदवा देना तो अब मेरा आवश्यक कर्तव्य हो जाता है। मुकद्दमे के सिलसिले में ८०) खर्च हुए हैं जो कि चम्पारन और गोरखपुर दोनों जिलों से मिले।

धर्म-दूत

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवलपरिपुन्नं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग (विनय पिटक)

"भिक्षुओ! सर्व साधारण के हित के लिये, लोगों को सुख पहुँचाने के लिये, उन पर दया करने के लिये तथा देवताओं और मनुष्यों का उपकार करने के लिये घूमो। भिक्षुओ! आरम्भ, मध्य और अन्त --सभी अवस्थाओं में कल्याणकारक धर्म का, उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य्य का प्रकाश करो।"

सम्पादक—धम्मानन्द

वर्ष ४ | सारनाथ, मार्च | बु० सं० २४८२ ई० सं० १९३९ | अंक ११

शुभा भिक्षुणी

(लेखक—श्री देवराज, एम० ए०)

"जीवक" के सुन्दर कानन में शुभा भिक्षुणी जाती थी स्वच्छन्द
सहसा उसका मार्ग रोककर एक वनेचर खड़ा हुआ मतिमन्द
"यह क्या?" बोली शुभा स्तब्ध हो 'भद्र! किया क्यों तुमने मार्ग-निरोध?
क्या मेरा अपराध? वीतरागिन से होता किसका कभी विरोध?"
बोला उद्धत, 'सुन्दरि, तेरी भ्रू-कमान का लगा हृदय में तीर,
निर्जन वन में एकमात्र हो तुम्हीं सहायक दूर करो यह पीर!'
'हट, हट, मलिन नितान्त! शुद्ध-सत्त्वा नारी से दूर, दुराशय, दूर
दास वासनाओं के! मेरे इष्टदेव ने किया मार-मद दूर।'
'रूपसि, क्यों यह क्रोध? फूल-से इस शरीर पर तपश्चरण का भार
छोड़ो पीले वस्त्र, चलो पुष्पित वन-भू में करें प्रमुक्त विहार
मदिर गन्ध से भरी पवन बह रही चतुर्दिक् उड़ता मधुर पराग
बरस रहा मकरन्द, भ्रमर-कुल करता गुंजन उमड़ रहा अनुराग।
'निर्जन पथ में कहाँ अकेली तुम जाओगी लिये कुसुम-सा गात
चकित दृष्टि से मार्ग ढूँढ़ कैसे पाओगी एण-दृशी, अवदात!
'मुझे न देना दोष, सुमुखि, दृग युगल तुम्हारे मोह रहे सविशेष
खंजन की, मीनों की, मृगकुल की अस्थिरता हुई यहाँ निश्शेष।

किस नभ के यह तेजवान नक्षत्र दे रहे राग-अग्नि का दान
किस अधीर वासना-नदी के भँवर सींचते डुला-डुलाकर प्राण !
'छोड़ सकूँगा कैसे इन नेत्रों का सुन्दरि आकर्षण उद्दाम
आज पंचशर की, मधुश्री की आशारंगिणी जान सकोगी वाम !'
'शान्त पाप ! यह आज **तथागत** की पुत्री से कौन घृणित प्रस्ताव !
बिना परों तुम चाह रहे अम्बर में उड़ना मेघ-शीश धर पाँव !!
'पूज्य **तथागत** के प्रभाव से मेरे उर में नहीं वासना-लेश
वसुधातल पाताल स्वर्ग की भोग्य वस्तुएँ मुझे शून्य-अविशेष ।
'अहो घृणित भौतिक काया को सुन्दर कहकर करते लोग बखान
जड़-पुत्तलिका-रँगे काठ के कुछ टुकड़ों से हो जिसका निर्माण !
'आकर्षक है कौन रँगी पुतली का अवयव—तनिक तोड़ देखो
सुन्दर आँखें, मोहक आँखें यह निकालकर दे देती हूँ, लो !'
'नहीं, नहीं !' कर चीख उठा निरुपाय वनेचर (छू न सका शुचिगात)
हँसी शुभा—कुछ रक्तबिन्दु थे उसके मुख पर दृग-गोलक ले हाथ ।
रो-रोकर पाँवों में विह्वल, विकल वनेचर चला शोक-उद्भ्रान्त
चली शुभा आगे अन्तर की ज्योति जगाये स्निग्ध, निराकुल, शान्त

("विशाल भारत" से)

आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग

(पिछले अंक से आगे)

वह यह नहीं जानता कि उसे किन बातों को मन में स्थान नहीं देना चाहिए, और किन बातों को मन में स्थान देना चाहिए। इसलिए, वह जिन बातों को मन में स्थान नहीं देना चाहिए, उन बातों को मन में स्थान देता है और जिन बातों को मन में स्थान देना चाहिए उनको मन में स्थान नहीं देता।

वह नामुनासिब ढंग से विचार करता है—"मैं भूतकाल में था कि नहीं था ? मैं भूतकाल में क्या था ? मैं भूतकाल में कैसे था ? मैं भूतकाल में क्या होकर फिर क्या क्या हुआ ? मैं भविष्यत्काल में होऊँगा या नहीं होऊँगा ? मैं भविष्यत् काल में क्या होऊँगा ? मैं भविष्यत्काल में कैसे होऊँगा ? मैं भविष्यत्काल में क्या होकर क्या होऊँगा ?" अथवा वह वर्त्तमान काल के सम्बन्ध में सन्देहशील होता है—"मैं हूँ कि नहीं हूँ ? मैं क्या हूँ ? मैं कैसे हूँ ? यह सत्त्व कहाँ से आया ? यह कहाँ जायगा ?"

उसके इस प्रकार नामुनासिब ढंग से विचार करने से उसके मन में इन छः दृष्टियों (मतों) में से एक दृष्टि घर कर लेती है। या तो वह इस बात को सच समझता है (१) "मेरा आत्मा है," या वह इस बात को सच समझता है (२) "मेरा आत्मा

नहीं है," या वह इस बात को सच समझता है कि (३) "मैं आत्मा से आत्मा को पहचानता हूँ," या वह इस बात को सच समझता है कि (४) "मैं अनात्मा से आत्मा को पहचानता हूँ" अथवा उसकी ऐसी दृष्टि होती है (५) जो "आत्मा" कहलाता है यह ही अच्छे-बुरे कर्मों के फल का भोगनेवाला है तथा (६) यह आत्मा नित्य है, ध्रुव है, शाश्वत है, अपरिवर्त्तनशील है, जैसा है वैसा ही (सदैव) रहेगा—भिक्षुओ ! यह सब केवल मूर्खता ही मूर्खता है।

भिक्षुओ, इसे कहते हैं मतों में जा पड़ना, मतों की गहनता, मतों का कान्तार, मतों का दिखावा, मतों का फन्दा, तथा मतों का बन्धन। इन मतों के बन्धन में बँधा हुआ आदमी, जिसने (सद्धर्म को) नहीं सुना वह जन्म, बुढ़ापे तथा मृत्यु से मुक्त नहीं होता और मुक्त नहीं होता, शोक से, रोने पीटने से, पीड़ित होने से, परेशान होने से, चिन्तित होने से। मैं कहता हूँ कि वह दुःख से मुक्त नहीं होता।

भिक्षुओ, जिस पण्डित आदमी ने आर्यों की संगति की है, आर्य-धर्म का ज्ञान प्राप्त किया है, आर्य-ध र्म का अच्छी तरह अभ्यास किया है; सत्पुरुषों की संगति की है, सद्धर्म का ज्ञान प्राप्त किया है, सद्धर्म का अभ्यास किया है—वह यह जानता है कि उसे किन बातों को मन में स्थान देना चाहिए, और किन बातों को मन में स्थान नहीं देना चाहिए। यह जानते हुए वह जिन बातों को मन में स्थान नहीं देना चाहिए, उन्हें मन में स्थान नहीं देता है, जिन्हें मन में स्थान देना चाहिए, उन्हें मन में स्थान देता है। वह "यह दुःख है" इसे भले प्रकार हृदयङ्गम करता है, "यह दुःख का समुदय है" इसे भले प्रकार हृदयङ्गम करता है, "यह दुःख का निरोध है" इसे भले प्रकार हृदयङ्गम करता है; और "यह दुःख के निरोध की ओर ले जानेवाला मार्ग है"—इसे भले प्रकार हृदयङ्गम करता है।

इन्हें इस तरह हृदयङ्गम करनेवाले के तीनों बन्धन कट जाते हैं :—(१) सत्काय-दृष्टि, (२) विचिकित्सा, (३) शील-व्रत परामर्श। जिनके भिक्षुओ, यह तीनों बन्धन कट गये हैं, वे सभी श्रोतापन्न हैं, उनका पतन असम्भव है, उनकी सम्बोधि-प्राप्ति निश्चित है।

पृथ्वी के एकछत्र राज्य से, स्वर्ग-लोक को जाने से, समस्त विश्व के आधिपत्य से भी बढ़कर है श्रोतापत्ति-फल।

भिक्षुओ, यदि कोई पूछे कि भगवान् गौतम किस दृष्टि के हैं ? तो उसे भिक्षुओ, क्या उत्तर दोगे ? भिक्षुओ, 'तथागत किस दृष्टि के हैं' ऐसी बात नहीं रही है। भिक्षुओ ! तथागत ने यह सब देख लिया है कि यह रूप है, यह रूप का समुदय है; यह रूप का अस्त होना है, यह वेदना है, यह वेदना का समुदय है, यह वेदना का अस्त होना है, यह संज्ञा है, यह संज्ञा का समुदय है, यह संज्ञा का अस्त होना है, यह संस्कार हैं, यह संस्कार का समुदय है, यह संस्कार का अस्त होना है; तथा यह विज्ञान है, यह विज्ञान का समुदय है; यह विज्ञान का अस्त होना है। इसलिए कहता हूँ कि सभी मानताओं के, सभी अस्तित्वों के, सभी अहङ्कारों के, सभी "मेरे" के, सभी अभिमानों के नाश से, विराग से, त्याग से; छूटने से, उपादान न रहने से, तथागत विमुक्त हो गये हैं।

भिक्षुओ, चाहे तथागत उत्पन्न हों, चाहे उत्पन्न न हों यह सदैव यों ही रहता है। सभी संस्कार अनित्य हैं, जैसे, रूप अनित्य हैं, संज्ञा अनित्य है, विज्ञान अनित्य है।

भिक्षुओ, चाहे तथागत उत्पन्न हों, चाहे उत्पन्न न हों, यह सदैव यों ही रहता है। सभी संस्कार दुःख हैं; जैसे, रूप दुःख है, वेदना दुःख है, संज्ञा दुःख है, संस्कार दुःख है, विज्ञान दुःख है।

भिक्षुओ, चाहे तथागत उत्पन्न हों, चाहे तथागत उत्पन्न न हों, यह सदैव यों ही रहता है। **सभी धर्म अनात्म हैं। जैसे, रूप अनात्म है, वेदना अनात्म है, संज्ञा अनात्म है, संस्कार अनात्म है, विज्ञान अनात्म है।**

भिक्षुओ, पण्डित जनों का कहना है कि रूप नित्य नहीं, ध्रुव नहीं, शाश्वत नहीं, अपरिवर्तनशील नहीं। मैं भी कहता हूँ कि नहीं है। वेदना-संज्ञा-संस्कार-विज्ञान, नित्य नहीं, ध्रुव नहीं, शाश्वत नहीं, अपरिवर्तन-शील नहीं। मैं भी कहता हूँ कि नहीं हैं। भिक्षुओ, तथागत के इस प्रकार कहने, उपदेश करने, प्रकाशित करने, स्थापित करने, विस्तार करने, विभाजन करने और उघाड़कर दिखा देने पर भी यदि कोई नहीं समझता है, नहीं देखता है, तो मैं ऐसे मूर्ख, पृथग्जन, अन्धे, जिसे आँख नहीं, जो समझता नहीं, जो देखता नहीं—को क्या करूँ ? **यह बात भिक्षुओ, बिल्कुल असम्भव है, इसके लिए बिल्कुल गुञ्जायश नहीं है कि कोई आँखवाला आदमी किसी भी धर्म को "आत्मा" करके ग्रहण करे।**

(क्रमशः)

आर्य सिद्धान्त

(लेखक—भिक्षु श्री मैत्रेय)

'मुझसे कभी किसी को कोई कष्ट न पहुँचे' यही सन्त जन की सदा चेष्टा रहती है। उसे सदा प्रत्येक प्राणी के सुख का ख्याल रहता है। उसका जीवन अमूल्य भले ही हो, पर वह सदा छोटे से छोटे जीव की प्राण-रक्षा के निमित्त अपनी जान देने को तैयार रहता है। सन्त पुरुष के दीर्घजीवी होने का क्या ठिकाना! वह अपना प्राण कभी भी अर्पण कर सकता है। वह संसार के सामने एक आदर्श प्रदान करता है। वह सत्य का पथ-प्रदर्शक और वास्तविक ज्योति-स्तम्भ है।

धर्म-ग्रन्थों में सन्तों की अनेक करुण-कहानियाँ मिलती हैं जिनने धर्म-हेतु अपने प्राण की बलि दी है। उनमें "भिक्षु तिष्य" की कथा बड़ी मर्म-स्पर्शिणी है। बारह वर्ष तक यह महात्मा श्रावस्ती (कोशल देश की राजधानी) के एक जौहरी के घर भोजन करते रहे। जौहरी और उसकी पत्नी इन्हें पुत्रवत् मानती रहीं।

एक दिन जौहरी बैठकर मांस काट रहा था। कोशल देश (प्राचीन भारत के १६ जनपदों में से एक) के राजा "प्रसेनजित" ने उसके पास एक रत्न भेजा और कहा कि शीघ्र इसे काट-छाँट और छेदकर भेज दो।

जौहरी के हाथ में खून लगा हुआ था। पर, उसने रत्न को ले लिया और बक्से पर रखकर हाथ धोने घर चला गया। इस समय भिक्षु "तिष्य" भी उसी घर में बैठे थे।

जौहरी ने एक बत्तक भी पाल रखा था। रक्त से आकर्षित होकर वह बत्तक वहाँ जा पहुँचा। भिक्षु के सामने ही वह बत्तक रत्न को मांस समझकर निगल गया। लौट

आने पर जौहरी ने रत्न के वहाँ नहीं देखा। उसने अपनी स्त्री और बच्चे के बुलाकर पूछा, "क्या तुममें से किसी ने रत्न लिया है?" उत्तर मिला, "नहीं"। जौहरी के अब यह समझने में देर नहीं हुई कि इसी भिक्षु ने मेरा रत्न चुरा लिया है। उसने अपना विचार अपनी पत्नी से प्रकट किया। पत्नी ने जवाब दिया, "पतिदेव, ऐसी बात मत कहें, इतने वर्षों से कभी भी मैंने इनकी कोई शिकायत नहीं सुनी है।"

तब, जौहरी ने भिक्षु से पूछा, "भन्ते! क्या आपने यहाँ पड़ा हुआ रत्न लिया है?"

भिक्षु ने उत्तर दिया, "नहीं गृहपति, मैंने नहीं लिया है।" फिर जौहरी ने कहा, "भन्ते, यहाँ और कोई नहीं था। आपही ने लिया है। मेरा रत्न लौटा दीजिए।"

भिक्षु के लगातार इन्कार करने पर जौहरी ने स्त्री से कहा, "भिक्षु ने रत्न अवश्य चुराया है। मैं दण्ड के हाथ सच्ची बात कहलवाऊँगा।"

स्त्री चिल्ला उठी, "पतिदेव, हमारा सत्यानाश मत करो। हम सबके लिये दास बनना श्रेयस्कर है, पर ऐसे महात्मा पुरुष पर दोषारोपण करना ठीक नहीं।"

जौहरी ने कहा, "हम सबके दास हो जाने पर भी उस रत्न की कीमत अदा नहीं की जा सकती।"

जौहरी ने एक रस्सी ली और उससे साधु के शिर को लपेटकर एक लाठी से दबाना आरम्भ किया। इस प्रकार ताड़ना देने पर भिक्षु के शिर, कान और नाक से रक्त की धारा बह चली। मालूम होता था कि भिक्षु की आँखें अब निकल जायँगी। पीड़ा से मूर्च्छित भिक्षु धराशायी हो गये। रक्त की गन्ध पा बत्तक फिर निकट आया और रक्तपान करने लगा। क्रुद्ध जौहरी ने पक्षी को एक लात ऐसा जमाया कि बेचारा तुरत मर गया।

पक्षी को शान्त पड़ा देख जौहरी से भिक्षु विनम्र भाव से बोले "गृहपति, मेरे शिर की रस्सी तनिक ढीली करो और देखो पक्षी जीवित है या मृत।" क्रोधावेश में उसने कहा, "जैसे यह पक्षी मरा है वैसे ही तुम भी मरोगे।"

जब भिक्षु ने सुना कि बत्तक मर गया है तो वह बोला, "अबोध गृहपति, जिस रत्न की तलाश में तुम हो, उसे तो यह बत्तक निगल गया था। यदि यह मर न गया होता तो मैं स्वयं भले ही मृत्यु के मुँह में चला जाता; पर रत्न कहाँ गया तुम्हें न बताता।" जौहरी ने तुरन्त पक्षी का पेट फाड़ा और उसे रत्न मिल गया।

परन्तु, साधु के साथ की गई अपनी करनी पर उसे बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वह बहुत दुखी हुआ। उसका हृदय शोक से भर गया। सारा शरीर काँपने लगा और वह धड़ाम से भिक्षु के चरणों पर गिरकर प्रार्थना करने लगा, "महात्मन्, मुझे क्षमा करो; मैंने यह सब अज्ञान से किया।"

भिक्षु, जो क्षमा और करुणा की साक्षात् मूर्ति थे, पश्चात्ताप करनेवाले पापी को सान्त्वना देते हुए बोले, "अबोध गृहपति, यह न तो तुम्हारा दोष था और न मेरा। यह जीवन-चक्र का दोष है। मैं तुम्हें हृदय से क्षमा करता हूँ।" किन्तु जौहरी की मार के कारण वे थोड़ी ही देर बाद निर्वाण को प्राप्त हुए।

("The Mahabodhi" से) अनुवादक, श्री रामकुबेर मौर्य M. Sc., B.T.

भगवान् बुद्ध और चर्खा

(लेखक—भिक्षु आनन्द कौसल्यायन)

पाली-त्रिपिटक का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है 'अंगुत्तर निकाय'। उसके पञ्चक निपात में निम्नलिखित सूक्त आया है—

"एक समय भगवान् भद्री के जातीय वन में विहार करते थे। उग्गह नामक मेण्डक-नाती, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया और भगवान् को प्रणाम करके एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठते हुए मेण्डक-नाती उग्गह ने भगवान् से कहा—"भगवान्! तीन और भिक्षुओं के साथ आप कल के लिए मेरा निमन्त्रण स्वीकार करें।" भगवान् ने चुप रहकर स्वीकार किया। तब, भगवान् की स्वीकृति जान, मेण्डक-नाती उग्गह आसन से उठ, भगवान् को प्रणाम कर, प्रदक्षिणा कर चला गया। उस रात्रि के बीत जाने पर भगवान् पूर्वाह्न समय (वस्त्र) धारण कर, पात्र चीवर ले जहाँ मेण्डक-नाती उग्गह का घर था, वहाँ गये, जाकर बिछे आसन पर बैठे। तब मेण्डक-नाती उग्गह ने भगवान् को अपने हाथ से भोजन परोसा। भगवान् के भोजन कर चुकने पर मेण्डक-नाती उग्गह ने एक ओर बैठे भगवान् से प्रार्थना की—"भन्ते! यह कुमारियाँ अपने पति के घर जायँगी। इन्हें कुछ उपदेश दें, कुछ अनुशासन करें जो इनके लिए चिरकाल तक सुखकर और कल्याणकारी हो।"

भगवान् ने कुमारियों को यों उपदेश दिया—

"तो कुमारियो, तुम्हें यह सीखना चाहिए कि तुम्हारा हित चाहनेवाले माता-पिता तुम्हारे हित का ख्याल करके तुम्हें जिस पति को सौंपें, तुम उससे पीछे सोनेवाली और पहले उठनेवाली होगी, उसकी आज्ञाकारिणी होगी, उसके अनुकूल चलोगी, उससे प्रिय-वचन बोलोगी।"

"तो कुमारियो, तुम्हें यह सीखना चाहिए कि तुम्हारे पति के जो आदर-भाजन हों, उसके माता-पिता हों, श्रमण—ब्राह्मण हों, उनको तुम मानोगी, सत्कार करोगी, पूजोगी और अतिथियों को आसन तथा जल से आदर करोगी।"

"तो कुमारियो, तुम्हें यह सीखना चाहिए कि तुम्हारे पति के जो घर के काम-काज हैं—**चाहे ऊन के हों, चाहे कपास के हों,** उनमें दत्त-चित्त होगी, आलस्यरहित होगी, उनमें अपनी बुद्धि खर्च करनेवाली होगी, उनके करने में समर्थ होगी।"

"तो कुमारियो, तुम्हें यह सीखना चाहिए कि तुम्हारे पति के घर में जो काम करनेवाले हों—चाहे दास हों, चाहे नौकर-चाकर हों—उनके कृत-अकृत को जानोगी—उनके सामर्थ्य को जानोगी, रोगी होने पर उनको उचित पथ्य दोगी।"

"तो कुमारियो, तुम्हें यह सीखना चाहिए कि जो कुछ तुम्हारे पति कमाकर लायें—धन-धान्य, सोना, अथवा चाँदी—कुछ भी हो, उसे सँभालकर रखनेवाली होगी, उसे नष्ट न करनेवाली होगी।

('हरिजनसेवक' से)

प्रेम ही दुःख है

(लेखक—श्री सुमन)

दुपहरिये का समय। दुखित, नाती के शोक से सन्तप्त विशाखा भीगे कपड़े, भीगे बाल कहाँ आ रही है? क्या यह पगली तो नहीं हो गई? वह देखो! विशाखा पूर्वाराम में ही तो आ गई। अब वह भगवान् बुद्ध के पास जा पाद-वन्दना कर बैठ गई। भगवान् के समीप आकर वह शान्त तो हो गई पर बाहर से, भीतर तो प्रिय-वियोग की आग जल रही है।

भगवान्—विशाखे! तुम्हारी ऐसी दशा क्यों? तू इस प्रकार भीगे केश, भीगे वस्त्र क्यों आई?

विशाखा—भगवन्! मैं लुट गई। मेरा सर्वस्व चला गया—सदा के लिए। मेरा प्राण, हाँ प्राण से भी प्यारा नाती काल के गाल में समा गया। वह मेरी आँखों पर रहता था। उसकी मृत्यु से आज हमारी यह दशा हो रही है।

भग०—विशाखे! घबड़ाओ मत। धैर्य धारण करो। बोलो, श्रावस्ती में जितने लोग रहते हैं क्या उतने नाती तू लेगी?

विशाखा—हाँ भगवन्! क्यों नहीं लूँगी! उतने नाती लेकर मैं बड़ी प्रसन्न होऊँगी।

भग०—विशाखे! श्रावस्ती में प्रति दिन कितने लोग मरते हैं?

वि०—भगवन्! कभी दस भी, कभी पाँच भी और कभी वह भी नहीं।

भग०—विशाखे! तो फिर कहो, कभी तुम्हारे ये वस्त्र और ये केश सूखने पायेंगे?

वि०—नहीं भगवन्! आप ठीक कहते हैं, कभी नहीं सूखने पायँगे। यथार्थ में इतने नाती तो जंजाल से प्रतीत होंगे।

भग०—विशाखे! सच बात तो यह है कि जिसको जितने ही प्यारे हैं उसको उतने ही दुःख हैं। दुःख की मात्रा, प्रेम की मात्रा पर निर्भर है। जो जितना ही प्रेम करते हैं वे उतना ही दुःख भोगते हैं। विशाखे! जिसको कोई प्यारा नहीं, उसको कोई दुःख नहीं।

संसार में अनेक तरह के दुःख, रोना-पीटना, शोक करना आदि केवल प्यार करने ही से होते हैं। यदि कोई प्यारा ही न हो तो दुःख कहाँ से होगा। जिसे इस लोक में कोई प्रिय नहीं है वही सुखी और शोकरहित होता है। इसी लिए संसार में प्यार न करते हुए मनुष्य को विरक्त और शोकरहित रहने की कोशिश करनी चाहिए।

सम्पादकीय

पालीभाषा वर्ग

कोई समय था जब पाली (=मागधी) न केवल सारे उत्तरी भारत के बोल-चाल की भाषा थी, बल्कि मौर्यकाल में वह सारे मगध साम्राज्य की राष्ट्रभाषा थी। भगवान् बुद्ध ने बहुजनसुखाय, बहुजनहिताय, जो कुछ उपदेश दिया वह उस समय की प्रचलित भाषा 'पाली' में ही। यदि उन्होंने संस्कृत में उपदेश दिया होता तो वह आम जनता के लिए उतना हितकर नहीं होता जितना इस भाषा से हुआ। इसलिए भगवान् बुद्ध का सारा उपदेश, जो 'त्रिपिटक' के नाम से संग्रहीत है, इसी भाषा में है। किन्तु दुर्भाग्यवश आज हमारे देश में ऐसे बहुत कम आदमी होंगे जिन्होंने पाली भाषा का नाम भी सुना होगा। हमें श्री तुङ्गारजी के कार्य से बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि पूना में उन्होंने एक पालीभाषावर्ग खोलकर पाली भाषा के अध्ययन-अध्यापन का कार्य शुरू किया है। हमें आशा है कि इसी प्रकार की कुछ पाठशालाएँ यदि भारत के और नगरों में भी खुल जायँगी तो पाली का अध्ययन सरल हो जायगा। श्री तुङ्गारजी को हम उनके इस प्रयत्न के लिए हृदय से धन्यवाद देते हैं।

सारनाथ में चीनी बौद्ध-विहार

८ फरवरी को चीन के प्रधान वाणिज्य-दूत श्री "फेंग" ने सारनाथ में चीनी बौद्ध-विहार की नींव डाली। हम इस विहार को ईंट-पत्थर का बना साधारण मकान न समझकर चीन और भारत के प्राचीन सम्बन्ध की पुनःस्थापना की नींव समझते हैं। हमें पूर्ण विश्वास है कि त्रिरत्न के अनुभाव से यह विहार दोनों देशों की एकता को बनाये रखने में प्रेम-सूत्र का काम करेगा।

कुछ अपनी बात

"धर्म-दूत" के पिछले अंक में हमने अपने प्रिय पाठकों तथा बौद्ध धर्म के प्रेमियों का ध्यान "धर्म दूत" की आर्थिक कठिनाइयों की ओर दिलाया था। आज फिर हम उन्हें कुछ अपनी बात कहना चाहते हैं।

चार वर्षों से लगातार "धर्म-दूत" अपने बावन रूप में हिन्दी भाषा-भाषी जनता में भगवान् बुद्ध के विमल सन्देश को सुनाता आ रहा है। पर, अभी तक उसके आकार प्रकार में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हो सका है। कारण, हमारे पाठकों ने हमें कभी विशेष उत्साह नहीं दिलाया। धर्म-दूत-परिवार अपनी शक्ति भर पत्रिका की उन्नति की चेष्टा करता रहा है, और आगे भी करता रहेगा। पर, हमारे प्रेमी पाठकों का भी कुछ कर्त्तव्य है। हम अपने हितैषियों तथा पाठकों से आशा करते हैं और सदा करते रहेंगे कि उनमें से प्रत्येक व्यक्ति साल में कम से कम पाँच नये ग्राहक बनाये। हमें इस बात से और भी प्रसन्नता होगी कि हमारे कोई पाठक अपने पास से धन देकर या दूसरों को प्रेरित करके सौ-पचास ग्राहक बना दें। "धर्म-दूत" की सबसे बड़ी सहायता यही हो सकती है।

वैशाख-पूर्णिमा को सज-धज के अनेक चित्रों से सुसज्जित 'नववर्षांक' निकालने का विचार है। "धर्म-दूत" का यह प्रथम विशेषांक होगा। अपने शुभेच्छुओं से हमारा नम्र निवेदन है कि वे इस कार्य में धन से तथा नये ग्राहक बनाकर हमारी सहायता करें।

नागरी लिपि में त्रिपिटक

आज हमें "धर्म-दूत" में ये पंक्तियाँ लिखते हुए अपार आनन्द हो रहा है कि हमारे देश के प्रकाण्ड विद्वान् भिक्षु श्री राहुल सांकृत्यायन, भिक्षु श्री आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु श्री जगदीश काश्यप जी ने **त्रिपिटक** के कुछ अंश को नागरी लिपि में सम्पादन कर हमारे साहित्य और धर्म के लिए महान् उपकार किया है। कुछ दिन पूर्व यदि हम त्रिपिटक का अध्ययन करना चाहते थे तो हमें सिंहल, बर्मी, स्यामी अथवा किसी अन्य विदेशी लिपि की शरण लेनी पड़ती थी। यदि कोई भारतीय पाली भाषा पढ़ने का साहस भी करता है तो लिपि का प्रश्न उसके सामने पहाड़-सा खड़ा होता जाता है।

इस समय हमारे विद्वान् भिक्षुओं ने सुत्तपिटक के खुद्दक निकाय के ११ ग्रन्थों को प्रकाशित कराया है। हमें आशा है, शीघ्र ही दूसरे ग्रन्थों के सम्पादन का कार्य शुरू कर दिया जायगा। इन ग्रन्थों के प्रकाशन में महास्थविर भिक्षु श्री उत्तम जी (वर्मा) ने जो आर्थिक सहायता की है उसके लिए हम भारतीय उनके कृतज्ञ हैं। हमारी उनसे प्रार्थना है कि अन्य ग्रन्थों के प्रकाशन में भी वे हाथ बँटाते रहेंगे। नागरी लिपि के पक्षपातियों से भी हमारा विनम्र निवेदन है कि वे इन ग्रन्थों को अपना कर सम्पादक और प्रकाशक को उत्साहित करेंगे।

बुलहवा के महन्त को सजा

कुछ दिन हुए, गोरखपुर के बुलहवा बाबा ने किसान-सेवक प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु श्री नागार्जुन जी को बिना किसी अपराध के अपने मन्दिर में ही लगभग ४०-४५ बेंत मरवाया था। भिक्षु जी के शरीर पर से, मारते समय, कपड़ा छीन लिया गया जिसके कारण उनकी पीठ बिलकुल फूट गई थी, और खून से शरीर सराबोर हो गया था। भिक्षु जी ने इसकी खबर पुलिस में दी और बुलहवा बाबा पर मुकदमा चलवाया। मुकदमे का फैसला हम अन्यत्र छाप रहे हैं। विद्वान् विचारपति ने जो फैसला दिया है वह बिलकुल उपयुक्त है। धर्म की आड़ में शिकार खेलनेवालों को इससे शिक्षा लेनी चाहिए।

पूना में पालीभाषा के अध्ययन का प्रबन्ध

७ जुलाई १९३७ ई० से पूना के न्यू इँगलिश स्कूल में श्री एन० के० तुंगारजो 'काव्यतीर्थ' 'पालीतीर्थ' ने एक पाली भाषा वर्ग स्थापित किया है। इसमें शिक्षा निःशुल्क दी जाती है। कितने विश्वविद्यालय के उपाधिधारी विद्याप्रेमी तथा संस्कृतज्ञ लोग इस वर्ग में आकर पाली भाषा की शिक्षा पाते हैं। गत साल दो सज्जन कलकत्ता संस्कृत असोसियेशन की प्रथमा परीक्षा में भी बैठे थे और दोनों ही प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। भारतीय महाबोधि सभा ने भी श्रीतुङ्गारजी के इस महान् कार्य को देखकर हार्दिक सहानुभूति प्रकट की है, और अपने यहाँ के प्रकाशित पाली ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद उन्हें प्रदान किया है।

हमारी नजरों में

"मध्य भारत" (साप्ताहिक पत्र) सम्पादक, श्रीकृष्ण शङ्कर शिवसेवक-तिवारी। वार्षिक मूल्य ३), पता—इतवारिया बाजार, इन्दौर।

"मध्यभारत" अपने ढङ्ग का अच्छा पत्र है। छपाई-सफाई आदि भी अच्छी है। समाचार और लेख चुने हुए तथा रोचक रहते हैं। आशा है हिन्दी जनता 'मध्यभारत' की कद्र करेगी।

"जनता" (सचित्र साप्ताहिक पत्र) सम्पादक, रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी। वार्षिक मूल्य ३) प्रकाशक—जनसाहित्यसंघ, बाँकीपुर, पटना।

'जनता' अपने नाम के अनुकूल ही एकमात्र जनता का पत्र है। इसकी एक-एक पंक्ति में, एक एक अक्षर में पीड़ित नंगे और भूखों की करुणोत्पादक चीख भरी रहती है। बिहार में जो आज किसान-मजदूर-जागृति की लपट उठ रही है उसका सबसे ज्यादा श्रेय 'जनता' और उसके छोटे से परिवार को है। जनता में आज तक हमने ऐसी एक भी पंक्ति नहीं देखी जिसे एक अपढ़ किसान नहीं समझ सकता हो।

भाषा की सरलता इस पत्र का सबसे बड़ा गुण है। समाजवाद जैसे गम्भीर और गहरे सिद्धान्त को चलती जबान में समझाना, संसार की सामयिक स्थिति और ताजे तथा सच्चा समाचार को गरीबों के राममड़ैया तक पहुँचाना जनता का ही काम है। जिसके पास हृदय है और जो संसार के दुख से दुखी होनेवाला है, वह 'जनता' को पढ़कर बिना आँसू बहाये न रहेगा। आशा है वह दिन शीघ्र ही हमारी आँखों के सामने आयेगा जब हम 'जनता' को न केवल बिहार में बल्कि सारे भारत के घर-घर में स्वतन्त्रता की आग जलाते देखेंगे। हमें पूर्ण विश्वास है कि हिन्दी भाषा-भाषी जनता इस प्रगतिशील पत्र को अपनायेगी।

"नाम-माहात्म्य" (मासिक पत्र) वार्षिक मू० १), प्राप्ति-स्थान—भजनाश्रम, वृन्दावन। पत्रिका उन लोगों के लिए उपयोगी है जो 'नाम्-भजन' में आज भी विश्वास करते हैं।

सत्य-सन्देश [मासिक पत्र]

(सम्पादक—दरबारीलालजी सत्यभक्त)

हिन्दू, मुसलमान, जैन, बौद्ध, ईसाई और पारसी आदि सभी समाजों में धार्मिक और सांस्कृतिक एकता का सन्देश देनेवाला, शान्तिप्रद सामाजिक क्रान्ति का बिगुल बजानेवाला, मौलिक और गम्भीर लेख, रसपूर्ण कहानियाँ, सामयिक टिप्पणियाँ और समाचार आदि से भरपूर मासिक पत्र। प्रत्येक अँगरेजी महीने के प्रारम्भ में समय पर निकल जाता है। सन् १९३९ के ग्राहकों को **सत्य-संगीत नामक पुस्तक** (मूल्य दस आने) **उपहार** में दी जायगी।

वार्षिक मूल्य **तीन रुपया** मनीआर्डर से भेजिए या वी० पी० के लिए लिखिए। एक प्रति के लिए चार आने का टिकिट आना चाहिए। नमूना मुफ्त नहीं भेजा जाता।

—सूरजचन्द सत्यप्रेमी
प्रकाशक—सत्य-सन्देश
सत्याश्रम वर्धा [सी० पी०]

"विप्लव" का 'आजाद-अंक', इस अंक की कीमत ॥), पता—गणेशगंज, लखनऊ।

'विप्लव' अपने विषय का अकेला पत्र है। 'आजाद-अंक' में वीरशिरोमणि श्री चन्द्रशेखर आजाद के सम्बन्ध में उन्हीं के साथियों, और सहयोगियों द्वारा अनेक लेख लिखे गये हैं। आजाद के सिद्धान्त और उनके कार्यक्रम के सम्बन्ध में जो मतभेद है उस पर भी अच्छा प्रकाश डाला गया है। पत्रिका पठनीय है। खास कर यह अंक तो बहुत ही उत्तम है।

रजिस्ट्री की संख्या ए २७६२

क्या आपके पुस्तकालय में ये पुस्तकें हैं ?

यदि नहीं तो आज ही आर्डर दीजिए ।

दीघनिकाय	५)	वार्तिकालंकार	३)
मज्झिम निकाय	६)	बुद्धचर्य्या	५)
धम्मपद	≡)	बुद्ध-वचन	।≈)
जातक (हिन्दी)	१)	उदान	१)
मिलिन्द प्रश्न	३॥)	बुद्ध और उनके अनुचर	१)
वाद न्याय (संस्कृत)	३)	खुद्दक निकाय के ११ ग्रन्थ	
अभिधर्म कोश	५)	(मूल पाली)	५॥)

नोटः—जो सज्जन आठ आना भेज महाबोधि ग्रन्थ-माला के स्थायी ग्राहक बन जायँगे उन्हें ग्रन्थ-माला की समूची पुस्तकें तीन-चौथाई (३/४) में मिलेंगी ।

मिलने का पताः—

महाबोधि पुस्तक-भण्डार

पो० ओ० सारनाथ, बनारस

प्रकाशक—धम्मजोति, महाबोधि-सभा, सारनाथ, बनारस ।
मुद्रक—धम्मजोति, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, बनारस-ब्रांच ।

धर्म-दूत

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्स

चित्त स्वभावतः पवित्र होता है। परन्तु विकारों से वह दूषित हो जाता है। ज्ञान-जल से चित्त की विकार-धूलि धो डालो।

— भगवान् बुद्ध

वर्ष ४
अंक १२

चैत्र पूर्णिमा बु० सं० २४८२
वि० सं० १९९६

वार्षिक मूल्य ॥)

विषय-सूची

'धर्म-दूत' के प्रेमियों से दो शब्द

इस अङ्क के साथ हम अपना चौथा वर्ष समाप्त कर रहे हैं। अपने छोटे आकार प्रकार में, साधनों के अभाव तथा अनेक प्रकार की विघ्न-बाधाओं के झेलते हुए भी 'धर्म-दूत' ने जो कुछ अपने प्रेमी जनता की सेवा की है वह बतलाना आत्मश्लाघा के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। अतः अपनी बुराई और प्रशंसा आप न करके हम अपने प्रेमी पाठकों पर ही छोड़ देते हैं।

'धर्म-दूत' का अगला अङ्क हम अपने पाठकों के 'नववर्षांक' के रूप में भेंट करने जा रहे हैं। इस अङ्क के सभी तरह से उत्कृष्ट बनाने का हम प्रयत्न कर रहे हैं। किन्तु यहाँ हमारे प्रेमी पाठकों और सहयोगियों का भी कुछ कर्त्तव्य है। क्या हम आशा करें कि हमारे पाठकों में से कुछ ऐसे सज्जन निकल आवेंगे जो कुछ नक़द द्रव्य देकर अथवा कुछ नये ग्राहक बनाकर हमें उत्साहित करेंगे? दान देनेवालों का नाम हम सहर्ष पत्रिका में छाप देंगे।

ग्राहकों के आवश्यक सूचना

'धर्म-दूत' का यह अङ्क इस वर्ष का अन्तिम अङ्क है। वैशाख का अङ्क 'नववर्षांक' होगा। यह अङ्क अनेक चित्रों, कविताओं और लेखों से सुसज्जित होगा। हमने यह भी निश्चय किया है कि नववर्षांक के बाद से 'धर्म दूत' की पृष्ठसंख्या बढ़ा दी जाय और पत्रिका सचित्र कर दी जाय। इस निश्चय के अनुसार अब 'धर्म-दूत' का वार्षिक मूल्य ॥) से १) कर दिया जायगा। अतः अब जो सज्जन ग्राहक होना चाहें उन्हें १) मनिआर्डर से या एक रुपये के टिकट भेजना चाहिए। ॥) भेजने पर सिर्फ ६ मास तक 'धर्म दूत' भेजा जायगा। अभी तक जो ग्राहक हैं उनका हिसाब पूर्ववत् ही रहेगा; किन्तु वर्तमान चन्दा समाप्त होने पर उन्हें भी १) भेजना होगा।

ग्राहकों के पत्र-व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य लिखना चाहिए। लेख, कवितादि सम्पादक के नाम और रुपये-पैसे व्यवस्थापक के नाम भेजना चाहिए।

धर्म-दूत

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवलपरिपुन्नं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ।

(महावग्ग विनय पिटक)

"भिक्षुओ! सर्व साधारण के हित के लिये, लोगों को सुख पहुँचाने के लिये, उन पर दया करने के लिये तथा देवताओं और मनुष्यों का उपकार करने के लिये घूमो। भिक्षुओ! आरम्भ मध्य और अन्त—सभी अवस्थाओं में कल्याणकारक धर्म का, उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य्य का प्रकाश करो।"

वर्ष ४ | सारनाथ, अप्रैल, बु० सं० २४८२ / ई० सं० १६३६ | अंक १२

भगवान् बुद्ध और भूखा आदमी

(लेखक—भिक्षु श्री मैत्रेय)

प्राणी-मात्र के हित करने की इच्छा से, संसार में विचरण करते हुए, भगवान् बुद्ध ने एक दिन प्रातःकाल एक निर्धन पुरुष को देखा; जिसका कोई साथी भी न था।

पाँच सौ भिक्षुओं के साथ भगवान् उस ग्राम में पहुँचे—जहाँ वह दीन रहता था।

भगवान् के आगमन के समाचार से सारा गाँव प्रसन्न हो गया। वह दीन पुरुष, जिसे सनाथ करने भगवान् वहाँ पहुँचे थे, आनन्द-विभोर हो सोचने लगा, "अहा, भगवान् पधारे हैं, आज उनके सदुपदेश सुनूँगा।"

उसी दिन उस निर्धन मनुष्य का एक बैल रस्सी छुड़ाकर जङ्गल की ओर भागा।

"पहले बैल को खोज लाऊँगा—तब उपदेश सुनूँगा" यह सोचते हुए जल्दी से वह जङ्गल की ओर दौड़ पड़ा।

इधर गाँव के लोग भगवान् और सब भिक्षुओं को अति स्वादिष्ठ और उत्तम भोजन खिला धर्मोपदेश सुनने के लिये बैठ गये।

परन्तु भगवान् ने सोचा, "वह भक्त, जिसका उद्धार करने के लिए मैं आया, जङ्गल की ओर चला गया है। जब तक वह न लौटेगा, मैं उपदेश न दूँगा" भगवान् तब तक शान्त रहे।

इतने में वह दीन पुरुष, बैल घर पहुँचा कर, उपदेशस्थल की ओर यह सोचते हुए दौड़ा "यदि भगवान् उपदेश देना समाप्त कर चुके होंगे, तो कम से कम उनका दर्शन कर चरण स्पर्श तो कर लूँगा।"

वह आया और भगवान् का अभिवन्दन कर, एक ओर बैठ गया। भूख के कारण उसका चेहरा मुरझाया था और नेत्रों से दुःख टपक रहा था।

अपने भक्त को क्षुधा से पीड़ित देखकर, भगवान् बुद्ध ने गृहस्थों को बुलाया और कहा, "भाई, क्या कुछ भोजन बचा है?" 'हाँ' उन्होंने कहा।

तब उन्होंने उस दीन पुरुष की ओर सङ्केत कर उसे खिलाने का आदेश किया। लोगों ने उसे बैठाकर पेट भर भोजन कराया। पेट भर भोजन कर उसने मुँह धोया। क्षुधा शान्त होने पर वह प्रफुल्ल चित्त हो उपदेश सुनने बैठ गया।

भगवान् ने उपदेश दिया और उस दीन को शान्ति मिली। भगवान् ने भिक्षुओं को सम्बोधन कर कहा "सब कष्टों और पीड़ाओं से बढ़कर भूख है।"

भगवान् के धर्मावलम्बियों, भगवान् की भाँति ही दीन-कङ्कालों की भूख-ज्वाला शान्त करो- संसार के भूखों की भूख शान्त होने पर ही संसार सुखमय होगा।

अनुवादक—रामकुबेर मौर्य्य M. Sc. B. T.

आत्म-दान

(लेखक—भिक्षु श्री नारद)

प्राचीनकाल में एक वन में, एक तपस्वी रहते थे। उनका एक शिष्य था जिसका नाम था अजित।

एक दिन जब वे घूम रहे थे, उन्होंने देखा कि एक पहाड़ के नीचे एक क्षुधा-पीड़ित बाघिनी, अपने तीन बच्चों के साथ भूख से मर रही है।

माँ और बच्चे दोनों को अपना जीवन प्रिय था। वे बहुत दिन तक जीवित रहना चाहते थे। यद्यपि वे जानवर होकर सुखमय जीवन व्यतीत नहीं कर सकते थे तथापि वे मरना नहीं चाहते थे। यही संसार की गति है। प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह गरीब हो या धनी, अपने जीवन से लगा रहता है। केवल एक अर्हत ही है जो मृत्यु से लापरवाह रहता है।

बाघिनी के बच्चे माँ के दूध पीने का लिए आगे बढ़े। लेकिन हाय! माँ की भूख बहुत तीव्र थी। उसे अपना जीवन अपने बच्चों की अपेक्षा अधिक प्यारा था। इसलिए वह अपने बच्चों को खाने को तैयार हो गई।

दयालु तपस्वी ने जब इस करुणोद्रेक दृश्य को देखा तो हृदय पिघल गया।

तपस्वी ने अपने शिष्य से कहा—"अजित! जाओ, इस भूखे प्राणी के लिए कोई शव खोजकर ले आओ।"

गुरु के आदेशानुसार वह आहार खोज कर ले आने को गया।

शिष्य को बहाने से बाहर भेजकर तपस्वी ने सोचा—

"जब रक्त-मांस से भरा अपना शरीर यहाँ पर मौजूद है तो, क्यों मैं दूसरे के मांस की खोज करूँ? मांस का मिलना कोई निश्चय तो है नहीं; लेकिन कर्त्तव्य पूरा करने के लिए जो मौका मिला है उससे भी मुझे विमुख होना पड़ेगा।"

"अपना शरीर, जो घृणित और सब दुःखों का घर है, दूसरों के हित के लिए देते समय जो खुश नहीं होता है वह बुद्धिमान् नहीं है। दो ही चीजें हैं जिनके कारण मनुष्य एक दूसरे के दुःख से दुःखित नहीं होता है। ये हैं—अपने सुख की अभिलाषा और सहायता करने की शक्ति की न्यूनता। किन्तु जब तक दूसरे प्राणियों को दुख है तब तक मुझे सुख कहाँ? मेरे पास सहायता करने की शक्ति है; क्यों मैं इसे करने से वञ्चित रहूँ?"

"इसलिए मैं इस दुःखमय शरीर का त्याग कर अपना शव इस बाघिनी को खिलाऊँगा; इस प्रकार उसे अपने बच्चों को मार डालने से रोकूँगा और बच्चों को भी माँ के दाँत से मारा जाने से बचाऊँगा।"

"इसके अतिरिक्त, ऐसा करके मैं उनके लिए एक आदर्श रखता हूँ, जो संसार की भलाई चाहते हैं। मैं दुर्बल को साहस देता हूँ; दान के तात्पर्य समझानेवालों को सन्तोष देता हूँ; सच्चरित्र लोगों को प्रोत्साहन देता हूँ; और अन्त में अपने शरीर-दान के द्वारा दूसरों के हित के लिए जिस मौके की इच्छा मैं कर रहा था, वह मौका अब मुझे मिल गया; और मैं जल्दी सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त होऊँगा।"

ऐसा विचार कर, तपस्वी ने अपने प्यारे शिष्य के आने के पहले ही पहाड़ के ऊपर से भूखी बाघिनी के सम्मुख कूदकर अपना प्राण त्याग किया। बाघिनी ने महापुरुष के शरीर का मांस खाकर अपनी क्षुधा को निवारण किया।

एक अमूल्य जीवन के दान से चार मामूली जीवों की रक्षा हुई।

यह तो हमारे लिए क्षति हुई, लेकिन उनके लिए लाभ हुआ।

हमारी दृष्टि में यह दुःख और मूर्खता है, लेकिन उनकी दृष्टि में यह महत्त्व-पूर्ण बात थी।

यह न केवल एक अस्वाभाविक घटना थी, बल्कि एक सर्वोत्कृष्ट दान था जिससे हमारी कल्पना भी हार जाती है।

तपस्वी का यह दान एक आदर्श दान था। उन्होंने अपने जीवन का दान दिया, इसलिए नहीं कि वे अपने जीवन से प्रेम न करते थे, बल्कि दूसरों के लिए उनका प्रेम असीम था। उन्होंने चार जीवों की रक्षा के लिए अपने अमूल्य जीवन का दान दिया। उनका जीवन-काल समाप्त हुआ, लेकिन बुद्धत्व-प्राप्ति के लिए उनका समय निकट हुआ। वे अपने आत्म-दान से अपने उद्देश्य के समीप पहुँच गये।

उनका शिष्य जब आहार लेकर आ गया तो वह गुरु को वहाँ न देखकर बहुत चिन्तित हुआ। किन्तु पहाड़ के नीचे हड्डियों का ढेर देखकर वह कारण समझ गया।

जहाँ पर हड्डियाँ थीं वहाँ पर उसने गुरु की स्मृति में एक स्तूप बना दिया।
इस प्रकार से महापुरुष अपने नाम को अमर कर जाते हैं।
हमारे शरीर नष्ट होते हैं, लेकिन हमारे काय जीवित रहते हैं।

अनुवादक—श्रामणेर श्री ज्ञानश्री

भिक्षु के पत्र (सं० १६)

प्रिय योगेन्द्र,

छपरा
१।३।३६

व्यक्तिगत प्रश्नों का उत्तर देने में आदमी को एक स्वाभाविक संकोच होता है। मुझे ऐसा लगता है कि उसी संकोच के कारण मैं तुम्हारे इस प्रश्न को टालता आया हूँ। लेकिन देखता हूँ कि तुम तो मेरे पीछे ही पड़ गये हो और जब तक यह न जान लोगे कि मैं भिक्षु क्यों हुआ तब तक मेरा पल्ला न छोड़ोगे। प्रश्न है समुचित, उसमें अनुचित कुछ भी नहीं। तुम्हारी तरह और भी कईयों ने अनेक बार पूछा है। कभी कभी उत्तर में कुछ कहना भी पड़ा है। लेकिन अब दस वर्ष के बाद ठीक ठीक यह कह सकना कि किसी समय मैं भिक्षु क्यों हुआ, सहज नहीं। सचाई की दृष्टि से मुझे अपने उस समय की मनःस्थिति और बाह्य परिस्थिति की बात कहनी चाहिए। लेकिन क्या वह ठीक ठीक सम्भव है? अविच्छिन्न रूप से सतत बहती चली आई चित्त-सन्तति की धार में न जानें तब से और कितने रङ्ग पड़ गये हैं। इसलिए आज जब मैं अपने भिक्षु होने की बात लिखने बैठा हूँ तो मुझे डर है कि उसमें अतीत की अपेक्षा कहीं वर्तमान की ही रङ्गत अधिक न हो।

मनुष्य कोई भी कार्य एक से अधिक कारणों से ही करता है। कोई भी कदम एक से अधिक बातों पर विचार करके ही उठाता है। किसी भी बात का, किसी भी कार्य का, कभी एक ही कारण नहीं होता। तो मेरे भिक्षु बनने के कौन कौन से कारण थे?

मुझे याद आता है कि अपने विद्यार्थी-जीवन में मैंने प्रसिद्ध देश-भक्त लाला हरदयाल एम० ए० लिखित एक किताब पढ़ी थी—शिक्षा-सम्बन्धी विचार (Thoughts on education)। उसमें एक परिच्छेद था—पेशे का चुनाव (Choice of a profession)। मनुष्य को अपना पेशा चुनते समय क्या यह सोचना चाहिए कि किस पेशे में सबसे अधिक आमदनी है? क्या यह सोचना चाहिए कि किस पेशे में सबसे अधिक आराम है? क्या यह सोचना चाहिए कि किस पेशे में सबसे अधिक हुक्म चलाने को मिलता है? क्या यह सोचना चाहिए कि किस पेशे में सबसे कम काम करना पड़ता है? कुछ इसी प्रकार की बातों पर विचार करके लाला हरदयाल ने यह निर्णय उपस्थित किया था कि मनुष्य को वही पेशा ग्रहण करना चाहिए जिसे ग्रहण करके वह समाज की अधिक से अधिक सेवा कर सके। लेकिन अपने भरण-पोषण का—अपने खाने-कपड़े का भार डाले

समाज पर कम से कम। उन्होंने किसी भी पेशे के अच्छे या बुरे होने के लिए यही माप-दण्ड स्वीकार किया था। जिस पेशे को ग्रहण करके आदमी जितनी ही अधिक समाज की सेवा कर सके, और जितना ही कम समाज पर भार बने, वह पेशा उतना ही अच्छा।

हाँ, तो अपनी शिक्षा समाप्त कर, मैं किसी पेशे की तलाश में था।

मुझे याद आता है, मैं अपने आस-पास, कालेजों में पढ़नेवाले हजारों नौजवानों की जिन्दगी पर विचार करता था। मैं सोचता था कि, ये लोग पढ़-लिख-कर किसी न किसी दफ़्तर में क्लर्की करेंगे, कोई छोटी-बड़ी नौकरी करेंगे, और दिन-रात उसमें ऐसे नाधे जाँयगे जैसे कोल्हू का बैल। शादी होगी, बच्चे होंगे, नून-तेल-लकड़ी का किस्सा होगा और एक दिन फिर चल बसेंगे। यही होगा इन हजारों जवानों के जीवन का इतिहास। क्या इनमें से कोई नागरी लिपि जैसी वैज्ञानिक लिपि के प्रचारार्थ विदेश जाने की बात सोचेगा? क्या इनमें से कोई अन्य प्रान्तों की भाषाएँ सीखकर उनमें अपनी राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार करने की बात सोचेगा? क्या इनमें से कोई किसी दूसरे देश के न सही, अपने ही देश के अज्ञात भौगोलिक प्रदेशों की यथार्थ जानकारी के लिए उन प्रदेशों का पर्यटन करने की बात सोचेगा? जैसे शिवाजी ने मुगल-साम्राज्य के विरुद्ध बग़ावत करने की बात सोची थी, उसी प्रकार क्या इनमें से कोई अँगरेजी साम्राज्य के विरुद्ध बग़ावत करने की बात सोचेगा? ऐसे विचार केवल दूसरों के लिए ही न थे, मुख्य रूप से अपने लिए थे। कभी कभी मैं सोचता था कि स्वतन्त्र हिन्दू राज्य नेपाल में जाकर कुछ करूँ। नेपाल जाना साधारणतया शिवरात्रि के मौके पर ही हो सकता है। मेरी अन्तिम वर्ष की परीक्षा शिवरात्रि के बाद होनेवाली थी। नेपाल जाने की धुन में मैं अपनी परीक्षा तक छोड़ने के लिए तैयार हो गया था।

हाँ, तो मैं कुछ साहस के कार्य करना चाहता था।

मुझे याद है कि आर्यसमाज के वेदों को अपौरुषेय तथा सारी विद्याओं का भण्डार मानने के सिद्धान्त ने मेरे मन में अजीब खलबली मचा दी थी। हमारे इतिहास के अध्यापक श्रद्धेय जयचन्द्र विद्यालङ्कार ने हमें बताया था कि वेद हमारे पूर्वजों की ऐसी कृति है कि जिन पर हम यथार्थ में अभिमान कर सकते हैं। और आर्य-समाज के बड़े-बड़े विद्वान् कहते थे कि वेद अपौरुषेय हैं, सब विद्याओं का भण्डार हैं। यों विवाद के लिए तो कोई भी पक्ष ग्रहण किया जा सकता है। लेकिन मेरे लिए पक्ष-विशेष के ठीक या गलत होने का बड़ा गम्भीर अर्थ था। मैं सोचता था, यदि वेदों में समस्त ज्ञान है तो सब काम छोड़कर मुझे सबसे पहले वैदिक संस्कृत ही सीखनी चाहिए। मैं आर्य-समाज के पण्डितों से सवाल किया करता कि महाशयजी, वेद शब्द का ठीक ठीक अर्थ क्या है? क्योंकि मैं देखता था कि यथा-अवसर वह कहीं तो 'वेद' का अर्थ चार किताबें करते हैं और कहीं केवल ज्ञान। अपने इस प्रश्न के मुझे जितने उत्तर मिले वे सब मेरे असन्तोष को उत्तरोत्तर बढ़ाते ही रहे। इसी प्रश्न की उधेड़-बुन में बहुत दिन तक संस्कृत की किताबें थैले में डाले घूमता रहा। स्वामी दयानन्द की निर्वाण-भूमि होने के कारण अजमेर का मेरे लिए बड़ा आकर्षण था। जब मैं एक बार घूमता घूमता वहाँ पहुँचा तो वहाँ के एक साधु-आश्रम में रहकर संस्कृत पढ़ने की इच्छा प्रगट की। एक

स्वामीजी ने पूछा तुम कहाँ से आये हो ? मैंने घर का पता ठिकाना बताया। बोले— इतनी दूर से आये हो, कहीं बीच में संस्कृत पढ़ने का ठिकाना ही नहीं लगा ! मेरा उत्तर था :—

"संस्कृत की पढाई और भोजन दोनों का एक साथ जुगाड़ कहीं नहीं लगा। जहाँ भोजन मिलता रहा वहाँ संस्कृत की पढ़ाई नहीं, जहाँ पढ़ाई का प्रबन्ध वहाँ भोजन नदारद।" दो ही चार दिन में मुझे पता चल गया कि आश्रम के प्राय: सभी साधु ऐसे पण्डित हैं कि यदि उन्हें एक पोस्टकार्ड लिखने की जरूरत हो तो वे उसका पहले मजमून स्लेट पर लिखेंगे, शुद्ध करेंगे और तब कहीं वह मजमून पोस्टकार्ड पर नकल होगा। उस साधु-आश्रम में अधिक दिन रहकर क्या मैं भाड़ झोंकता ?

मुझे याद है, और भुलाये नहीं भूलते अपने सार्वजनिक जीवन के आरम्भिक एक दो वर्षों के कुछ अनुभव। उनकी स्मृति मधुर नहीं है, इसलिये आज मैं उनका उल्लेख न करूँगा। मुझे लगा कि 'देश-सेवा' के क्षेत्र में भी वैसी ही धाँधली है जैसी कई और क्षेत्रों में। जिन्होंने जन्म भर दुनिया के ऐश-आराम लूटे हैं और लोगों के पसीने की कमाई से अपना घर भर रखा है, वे उस वक्त भी जब कि कब्र में पैर लटकाये बैठे हों, अपनी इकट्ठी की हुई दौलत में से कुछ हिस्सा सार्वजनिक-संस्थाओं को देकर दो दिन में 'त्याग-मूर्ति' बन जाते हैं। और वे जिन्होंने उन्हीं की तरह कमाने की सामर्थ रख कर भी अपनी जवानी के आरम्भ में ही देश-सेवा का कठिन व्रत ले लेने के कारण उधर मुँह ही नहीं किया, जो जन्म भर देश के लिए तपस्या करते रहे वे उन त्याग-मूर्तियों के सामने ऐसे फीके रहते हैं जैसे चन्द्रमा के सामने तारे। जिन्होंने बदन में एक बार कालिख पोत कर उसे धोया उनकी कहीं अधिक कदर होती है उन लोगों की अपेक्षा जिनका मुँह सदा ही निर्मल रहा।

इस धाँधली का एक और पहलू भी है। जिनके घर खाने-पीने को है, जो सार्वजनिक रुपये में से बड़ी-बड़ी तनख्वाहें लेते हैं वे यदि मोटर में बैठकर चन्दा माँगने निकलते हैं तो उन्हें खूब चन्दा मिलता है, वे यदि सार्वजनिक पैसे का अपव्यय करें तो प्राय: उधर से आँख बन्द कर ली जाती है। लेकिन जो गरीब घर में पैदा हुए हैं, जो सार्वजनिक पैसे में से ठीक अपनी आवश्यकता भर लेते हैं और अपनी आवश्यकता को कम से कम रखने की कोशिश करते हैं, जो सच्चे अर्थों में देश के सिपाही हैं वे जब पुनीत से पुनीत कार्य के लिए भी चन्दा माँगने निकलते हैं तो वे कहीं कुछ नहीं कर पाते और उनके हाथ से यदि सार्वजनिक रुपये का एक पैसा भी इधर-उधर हो जाये तो फिर वे कहीं के नहीं रहते।

इस प्रकार की धाँधली का उस समय मेरे मन पर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि 'देश-सेवा' के क्षेत्र में भी या तो धनियों के लिए ही स्थान है या फिर उनके लिए जो बड़ी-बड़ी तनख्वाहें लें।

नतीजा यह हुआ कि अपने सार्वजनिक जीवन के प्रथम वर्ष में ही मेरे मन में एक मौन किन्तु दृढ़ संकल्प हो गया कि मैं कभी किसी संस्था से गुजारे के लिए कुछ लेकर "वेतन-भोगी" देश-सेवक नहीं बनूँगा।

हाँ तो जिस समय मैंने अपने जीवन का पेशा स्थिर नहीं किया था, जिस समय साहसी जीवन के प्रेम में बिना पैसे के लगभग सारे भारत की चारिका (भ्रमण) कर चुका था, जिस समय वेदों को वा किसी भी ग्रन्थ को प्रमाण मानने न मानने का द्वन्द्व मेरे हृदय में चलरहा था उस समय बाबा रामोदारदास (श्रद्धेय राहुलजी) की प्रेरणा और निमन्त्रण के बल पर मैं सिंहल पहुँचा। अपने भारत-भ्रमण के सिलसिले में मैं लुम्बिनी बुद्ध-गया, सारनाथ, कुशीनगर आदि सभी बौद्ध-तीर्थों की यात्रा कर चुका था। लेकिन उससे क्या ? बौद्ध-धर्म के मूल सिद्धान्तों के बारे में तो मैं ऐसा ही अनभिज्ञ था जैसा कोई भी साधारण भारतवासी। सिंहल पहुँच कर जब मुझे पता लगा कि बौद्धधर्म केवल प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण को मानता है और उसमें शब्द-प्रमाण के लिए बिलकुल जगह नहीं तो मेरे दिल की कली खिल गई। मुझे अकथनीय सहारा मिला। आज मेरे लिए शब्द-प्रमाण को मानने न मानने का प्रश्न उतने महत्व का नहीं; लेकिन उस समय यही मेरा सर्वस्व था। बहुत बड़े मानसिक संघर्ष के बाद मुझे पुस्तकों की गुलामी से आज़ादी मिली।

उन दिनों मेरा अधिक समय राहुलजी से संस्कृत पढ़ने में व्यतीत होता। लेकिन अब आँख खोलकर पढ़ता था। उपनिषदों से अब यह आशा न रह गई थी कि किसी दिन अचानक उनमें से कोई ऐसी बात निकलेगी जो हमेशा के लिए ज्ञान-चक्षु को खोल देगी। उपनिषदों को भी मैं और ग्रन्थों की तरह सत्यासत्य विचारों का ही समूह मात्र समझता।

शब्द-प्रमाण का तो यह हाल हुआ और आत्मा तथा परमात्मा का ! राहुलजी ने मेरे गले यह बात उतारी कि यदि तुम शब्द-प्रमाण नहीं मानते तो तुम्हारे आत्मा और परमात्मा के लिए भी गुञ्जाइश नहीं। एक महीने तक मैं इस बात की कोशिश करता रहा कि शब्द-प्रमाण के अतिरिक्त आत्मा-परमात्मा का कोई दूसरा मददगार मिल जाय लेकिन जब वेदान्त सूत्रों को भी 'शास्त्रयोनित्वात्' की दुहाई देते देखा तो कुछ आशा न रही। शास्त्र की प्रामाणिकता के साथ आत्मा और परमात्मा भी जाते रहे।

अविवाहित रहकर देश की जो बन पड़े सेवा करते रहने का संकल्प था ही, जीवन-निर्वाह के लिए किसी भी निश्चित व्यक्ति वा संस्था से कुछ न लेना चाहता था। आदर्श और व्यवहार-दोनों को साथ साथ निभा सकने की समस्या थी। मुझे लगा कि भिक्षु-जीवन मेरे प्रश्न का एक मात्र उत्तर है।

दिल जब किसी आदर्श की ओर एक बार लुढ़क जाता है तो दिमाग के पास दलीलों की कमी नहीं रहती। अब मैं जिधर सोचता उधर मुझे भिक्षु-जीवन ही भिक्षु-जीवन दिखाई देता।

१० फरवरी १९२८ ईस्वी को पूज्य गुरुदेव लु० धम्मानन्द के हाथों दीक्षा मिली और एक वर्ष बाद भिक्षु संघ ने नियमपूर्वक उपसम्पदा दी। जीवन में इससे बढ़कर सम्पत्ति आज तक कहीं से प्राप्त न हुई।

यदि मैं यह कहूँ कि उस समय मैंने अपने भिक्षु-जीवन की जैसी कल्पना की थी वह ठीक ठीक उसके अनुरूप ही व्यतीत हुआ तो यह सत्य न होगा। साधना-पथ कभी

भी समतल नहीं रहा है। मुझे भी बहुत ऊँच-नीच देखनी पड़ी। सन्तोष इतना है कि साधना में आज भी श्रद्धा अडिग है।

विनय-पिटक में भिक्षुओं के सैकड़ों नियम हैं। तुम पूछोगे कि आप कहाँ उन सब नियमों का पालन करते हैं? विनय-पिटक के नियम ढाई हजार वर्ष पहले की चीज़ हैं। देश, काल बदल जाने से उनका अक्षरशः पालन न सम्भव है, न वाञ्छनीय। हाँ, कई नियम ऐसे हैं जिनको यदि मैं पालन कर सकता तो मुझे ऐसा लगता है कि वे मेरे सन्तोष में वृद्धि का कारण होते।

लेकिन जीवन के अपने भी तो नियम हैं। वह विनय-पिटक के ही नियमों को कहाँ तक माने। जीवन-धारा जब बहती है तो नियम-उपनियमों की रेखायें उसके लिए अलंघ्य नहीं रहतीं। इन नियम-उपनियमों के पीछे भिक्षु-जीवन के आदर्श की जो प्रेरणा है वही मेरी मार्ग-प्रदर्शिका रही है। सो आगे भी रहे।

तुम्हारा
—— **आनन्द कौसल्यायन**

भगवान् बुद्ध

(रचयिता—सत्यप्रेमी सूरजचंद डाँगी)

बहा दो फिर करुणा की धार,
नाना विध अत्याचारों से तपा हुआ संसार।
बहा दो फिर करुणा की धार॥

(१)
शुद्धोदन के पुत्र दुलारे,
अखिल जगत के नयन सितारे।
कहाँ गये गुरुदेव हमारे, हमें छोड़ इस पार॥ बहा दो...॥

(२)
सुलगी आज पर[illegible] ज्वाला,
हुआ हमारा म[illegible]स काला।
पिला पिलाकर रस का प्याला, करो शांति संचार॥ बहा दो...॥

(३)
अहंकार का लिया सहारा।
मतान्धता में धर्म विसारा॥
आर्य्यसत्त्व का तत्त्व तुम्हारा, रहा न अब व्यवहार॥ बहा दो...॥

(४)
सुन्दर मध्यम मार्ग सिखा दो,
जाति-पाँति का मोह मिटा दो।
प्रेम नाम का तीर्थ बना दो, सद्विवेक का सार॥ बहा दो...॥

(५)
अहंकार में अंतर्यामी,
सूर्यचंद चमका दो स्वामी।
सत्य अहिंसा के अनुगामी, हरो भूमि का भार॥ बहा दो॥

———

महाबोधि विद्यालय, सारनाथ

(अँगरेज़ी मिडिल स्कूल)

सारनाथ में कई वर्षों से एक अँगरेज़ी स्कूल, हिन्दी मिडिल स्कूल और एक प्राइमरी स्कूल (लगभग ४० वर्ष से) चलाया जा रहा है। गत वर्ष स्कूल को सरकार से मन्जूरी (Recognition) मिल गई। इस साल स्कूल की अपनी एक भव्य इमारत भी बन गई है। स्कूल की उन्नति दिन ब दिन हो रही है।

पिछले साल स्थान की कमी के कारण बहुत से लड़के दाखिल न किये जा सके। इस साल स्कूल की अपनी अलग इमारत होने से लड़कों के रहने का सुन्दर प्रबन्ध बिरला धर्मशाला में किया गया है। और जल्दी ही एक नया बोर्डिङ्ग हाउस भी बनाने का आयोजन हो रहा है।

देहात में होने के कारण यहाँ का शान्त वातावरण स्वास्थ्य और शिक्षा दोनों के उपयुक्त है। इसके अतिरिक्त, सारनाथ एक ऐतिहासिक स्थान होने के कारण यहाँ अमेरिका, इँगलैण्ड, जर्मनी, फ्रांस, जापान, चीन आदि सुदूर देशों यात्री के हजारों की संख्या में आया करते हैं। लड़कों को उन्हें देखने और उनके सम्पर्क में आने का मौका मिला करता है। इस प्रकार बालकों के मानसिक विकास में बहुत सहायता मिलती है। स्कूल शहर से दूर होने के कारण, देहात के लड़कों की सुविधा और उनकी आवश्यकताओं के भी अनुकूल है।

लड़कों में दस्तकारी के प्रति प्रोत्साहन देने का भी विचार हो रहा है। यहाँ का महाबोधि अस्पताल लड़कों के लिये चौबीसों घण्टे खुला रहता है। खेल-कूद की भी समुचित व्यवस्था है।

अपने स्कूल के पुस्तकालय के साथ-साथ लड़के मूलगन्ध कुटी विहार के बृहत् पुस्तकालय से भी फायदा उठाते हैं, जिसमें अनेक भाषाओं की हजारों पुस्तकें हैं और दुनिया के विभिन्न भागों से पचासों दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्र-पत्रिकाएँ आती रहती हैं।

यहाँ और भी अनेक वस्तुएँ उपलब्ध हो जाती हैं जिनको लड़के स्वतन्त्र प्रयोग कर सकते हैं। अभी हाल में ही एक टेलीस्कोप (दूरबीन) आया है जिससे चन्द्र, सूर्य, ग्रह तथा नक्षत्र दिखाई पड़ते हैं।

इन सब सुविधाओं के अतिरिक्त यहाँ पर फीस और जगहों से बहुत ही कम है—इतनी कम है जिससे कम किसी भी इमदादी स्कूल में नहीं रखी जा सकती। यहाँ स्कालरशिप तथा फीस माफी भी दी जाती है। गरीब और अछूत बालकों के लिये अनेक सुविधाएँ हैं। यहाँ की जनता को इस विद्यालय से ज्यादा से ज्यादा फायदा उठाना चाहिए।

भिक्षु जगदीश काश्यप, एम० ए०
प्रधानाध्यापक
महाबोधि विद्यालय, सारनाथ (बनारस)

बौद्धमठ के ध्वंसावशेष

नागार्जुन के दाँत और महात्मा बुद्ध के अस्थिभस्म

मद्रास में महत्त्वपूर्ण खोज

भारतीय पुरातत्त्व विभाग द्वारा मद्रास के गण्टूर जिले के नागार्जुन कुण्ड में जो खुदाइयाँ हो रही थीं उनके परिणाम स्वरूप वहाँ हाल ही में बहुत ही पुराने युग की बहुत सी वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं, जिनमें, विश्वास किया जाता है कि, महान् बौद्ध भिक्षु नागार्जुन के दाँत और महात्मा बुद्ध की अस्थिभस्म भी है।

हाल की खुदाइयों से जो ध्वंसावशेष मिले हैं उनमें से एक स्तूप, दो चैत्य और एक मठ है जिसके बीचोबीच एक मण्डप भी बना हुआ है। यह सब वृत्ताकार दिखाई देते हैं किन्तु अन्दर से चौकोर हैं। स्तूपक्षेत्र में जो पत्थर मिले हैं उनकी खुदाई बड़ी बारीक है। कई शिलाओं पर बुद्ध के जीवन की घटनाओं के दृश्य खोदे गये हैं। ये सब चीजें नागार्जुन के अजायबघर में रक्खी हैं।

एक चैत्य उत्तर की ओर है जिसमें भगवान् बुद्ध की प्रस्तर मूर्त्ति है। बुद्ध की मूर्त्ति के पद्मासन के ऊपरी भाग में एक छोटा सा गढ़ा बना हुआ है जो एक पत्थर से बन्द किया गया था। जब इसको हटाया गया तो उसके नीचे अस्थिभस्म और एक सोने की डिबिया मिली। इस डिबिया में ९५ मोती मिले जो एक को छोड़कर सरसों से भी छोटे हैं।

चैत्यों के पूर्व में एक मठ मिला है। उसके एक कमरे में एक पत्थर का घड़ा है जिसके अन्दर दो छोटे छोटे दाँत बिल्कुल सुरक्षित अवस्था में पाये गये हैं। स्थानीय गाथाओं से पता चलता है कि घड़े में जो दाँत रक्खे गये हैं वे भिक्षु नागार्जुन के हैं, जिनके नाम पर इस स्थान का नाम नागार्जुन रक्खा गया है। इस स्थान में अभी खुदाई का काम बहुत बाक़ी है।

× × × ×

दिल्ली के बौद्ध-विहार का उद्घाटन १८ मार्च को महात्मा गान्धी के कर-कमलों से हुआ। इस अवसर पर भारत, स्याम, बर्मा, चीन, जापान, लंका आदि बौद्ध देशों के अनेक भिक्षु तथा गृहस्थ उपस्थित थे। हजारों लाखों आदमियों ने उस दिन बुद्ध-मूर्ति की पूजा की। महाबोधि सभा के प्रधान मन्त्री श्री देवप्रियजी, तथा इस मन्दिर के निर्माण करानेवाले दानवीर सेठ युगलकिशोरजी बिड़ला भी उपस्थित थे। पूज्य महात्माजी ने अपने हाथों से भगवान् बुद्ध की मूर्ति को पुष्प चढ़ाया और दीपक आदि जलाकर पूजा की।

श्री भिक्षु ज्ञानश्रीजी (भूतपूर्व सुरति रञ्जनराय) लंका से भारत लौट आये। आप आजकल दिल्ली के बौद्ध-विहार में रह रहे हैं।

अमेरिका में बौद्ध-धर्म—संसार के कोने कोने में बौद्ध-धर्म का प्रचार बढ़ता जा रहा है। जापानी भिक्षुओं के प्रयत्न से अमेरिका में अनेकों बौद्ध-धर्म के प्रचार-केन्द्र खुल गये हैं। वहाँ इस समय २००,००० के करीब बौद्ध रहते हैं।

कोरिया का बौद्धसंघ प्रति वर्ष जापान के बौद्ध विश्वविद्यालयों में पढ़ने के लिए होनहार नौजवानों को अपने खर्च से भेजता है। अब तक ४० ऐसे छात्र भेजे जा चुके हैं, जिनमें १२ शिक्षा समाप्त कर कोरिया लौट चुके हैं।

फ्रांस की बौद्ध-सभा की अध्यक्षा श्रीमती जी० सी० लाँसबरी और मन्त्रिणी श्रीमती एम० एल० फ़्यून्टे जनवरी में भारत के पवित्र बौद्ध-तीर्थों के दर्शन करने आई थीं। 'बौद्धध्यान' (Buddhist Meditation) नामकी प्रसिद्ध पुस्तक श्री लांसबरी की ही लिखी हुई है। आपने फ्रांस में बौद्ध-धर्म के प्रचार के लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया है। दूसरी महिला ने भी 'तिब्बती योग' (Tibetan yog) तथा अन्य कई प्रसिद्ध पुस्तकों की रचना की है। आप दोनों भद्र महिलायें भारत से लङ्का गई हैं जहाँ एक 'अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध-महिला संघ' की स्थापना करेंगी।

बौद्ध-संगीत का प्रचार

बौद्ध-संगीत विद्या के प्रचार के लिए और उसे नवीन रूप देने के लिए "बौद्ध संगीत सभा" के नाम से एक सभा टोकियो (जापान) में कायम की गई है। उस सभा की ओर से पुरस्कार देकर बौद्ध-गानों का संग्रह किया जा रहा है।

रजिस्ट्री की संख्या ए २७६२

सूचना

बनारस में साम्प्रदायिक दंगा होने के कारण 'धर्म-दूत' का अंक देरी से निकल रहा है।—सम्पादक

सं०, प्रकाशक—धम्मजोति, महाबोधि-सभा, सारनाथ, बनारस।
मुद्रक—धम्मजोति, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, बनारस-ब्रांच।